





‘सिद्धार्थ’कार

पूजनीया माता

श्रीमती

सरस्वतीदेवीकी

पुण्य-स्मृतिमें

मैं इतना और भी निवेदन कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि इस ग्रन्थको मैंने, जहाँतक हो सका है, शुद्ध खड़ी बोलीमें लिखनेका प्रयत्न किया है,—अर्थात् मेश्रित समास, उलटे समास, व्याकरण-असम्मत प्रयोग तथा ब्रज-बोली अथवा अन्य किसी बोलीकी पुट इसमें आप बहुत कम पावेंगे। 'कवि और कविता' में जो व्यक्त किये गये हैं वे सभी विचार मेरे ही मस्तिष्ककी उपज हों, ऐसा नहीं है, परन्तु वे मुझे सर्वांशमें मान्य हैं। उक्त भावोंको व्यक्त करना मेरे लिए आवश्यक इसलिए भी था कि उनके वशवर्ती होकर मैंने यह काव्य रचा है।

यह काव्य केवल इसीलिए 'महाकाव्य' नहीं है कि इसमें प्राकृतिक दृश्यों, ऋतुओं आदिका वर्णन है,—जैसा कि हमारे ग्रन्थोंमें महाकाव्यके लक्षण दिये गये हैं, वरन् इसलिए भी कि इसमें मनुष्य-जीवनकी उन सभी घटनाओंका समावेश है जो उसके जीवनमें किसी न किसी समय आ उपस्थित होती हैं।

प्रश्न हो सकता है कि इस कार्यके लिए मैंने भगवान् बुद्धके चरित्रको ही क्यों चुना? हमारी भाषामें राम कृष्ण आदि महापुरुषों अथवा देवताओंके, या यों कहिए अवतारोंके, चरित्र प्रचुरतासे विद्यमान हैं, परन्तु एक तो वे बहुत पहलेके होनेके कारण पिष्ट-पोषित भी हो चुके हैं,—साथ ही वे पौराणिक आवरणमें इतने ढके हुए हैं कि, रामचरितमानसके पात्रोंको छोड़कर, उनको एक बुद्धि-सम्मत रूप देना कभी कभी हास्यास्पद हो जाता है। भगवान् बुद्धके चरित्रमें यह विशेषता है कि वह उत्तरोत्तर उन्नत होता चला गया है। हम उनके चरित्रमें मनुष्यकी आत्माका पूर्ण विकास पाते हैं। किस प्रकार एक विशुद्ध आत्मा संसारके घातोंसे प्रतिघात पाती हुई निःश्रेयसकी ओर बढ़ती है तथा किस प्रकार उसको सफलता प्राप्त होती है, यही बुद्ध-चरित्रकी विशेषता है। उनके चरित्रसे मैं बहुत ही अभिभूत हुआ हूँ क्योंकि वह सर्वथा निष्कलंक है।

अन्तमें, मैं उन सभी पूर्ववर्ती एवं सम-कालीन कवियोंका कृतज्ञ हूँ जिनके ग्रन्थोंको पढ़कर मेरी प्रतिभा उद्दीप्त हुई और जिनके ग्रन्थोंसे मैंने पूरा पूरा लाभ उठाया है।

‘ अनूप ’

कविताका स्वरूप निर्णय करना कठिन ही नहीं, अशुभ भी है; क्योंकि, कविताका आश्रय न तो कोई पदार्थ है और न सिद्धान्त,—नह तो एक प्रकारकी मनःस्थिति है जो जितनी ही अधिक अभिगम्य है उतनी ही कम विवेचनीय। हाँ, मायागण स्वयं हम कह सकते हैं कि कविता एक ऐसी शक्ति है जो मन और पद दोनोंमें अनुभूत हो सकती है, जो केवल शब्दार्थोंमें ही नहीं वरन् स्वरोंमें भी वर्तमान रहती है और जो नादके अतिरिक्त उन दृश्योंसे भी अपना हृदय दिला देनेके लिए फूट निकलती है जो वास्तु एवं स्थापत्यद्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। ऐसी मन-स्थितिकी,—ऐसी शक्तिकी, परिभाषा न हो सकनेके कारण हमें उसका शुद्ध स्वरूप पहिचाननेके लिए अन्य-व्यतिरेकसे काम लेना पड़ेगा और यह देसना पड़ेगा कि कौन-सी वस्तु कविता है और कौन-सी नहीं।

कविता विज्ञान नहीं है क्योंकि कविताका क्षेत्र भाव है और सहचरी श्रद्धा है; जब कि विज्ञानकी फ्रीडा विचारपर निर्भर है जिसका कि सहचर विश्वास है। कविताके जिस स्वरूपका यहाँ वर्णन हो रहा है वह उपन्यासमें भी रहता है परन्तु उपन्यास काव्य नहीं है। कविता केवल आलंकारिकता भी नहीं है क्योंकि आलंकारिकतामें सौन्दर्य ध्वनित होता है परन्तु कवितामें तो वह प्रतिध्वनित होता है और वह भी इस प्रकारसे जैसे किसी किसी समय गीतके 'जोड़' से ऐसे स्वर कानमें आते हैं जिनके वादन-मुहूर्तका शान तक हमको नहीं होता। आलंकारिक जो कुछ कहता है श्रोताओंसे कहता है और कवि 'स्वान्तः सुखाय' अपने भावोंको अपने आपपर ही प्रदर्शित करता है, जैसे कोई रजनीकी निस्तब्धतामें जंगलमें बाँसुरी बजाकर मस्त हो रहा हो। कविताद्वारा हम अपने भाव अपनेसे ही कहते हैं, आलंकारिकतासे हम अपना प्रभाव दूसरोंपर डालते हैं।

कविता 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की समष्टि है क्योंकि यदि सत्यता न हो तो रसका परिपाक नहीं हो सकता, सौन्दर्य न हो तो आलंकारिकता नहीं आवेगी और कल्याणकारिता न होगी तो कवियोंको अन्य सासारिक सफलता प्रायः प्राप्त होन न पर भी उन्हें 'सद्यः परिनिवृत्तये' का पाठ कौन पढ़ावेगा ?

इन तीनों गुणोंमें सौन्दर्य प्रधान है; क्योंकि, कविताका धर्म आनन्द देकर हृदयको सुसंस्कृत और उत्तेजित करना है और आनन्दके अत्यधिक स्वरूपको ही सौन्दर्यके नामसे पुकारा जाता है। अन्य ललित कलाओंके समान कविताका चरम उद्देश्य आनन्द प्रदान करना है और संसारमें मनुष्य-जीवनको किस प्रकार सुखी बनाया जाय, इस समस्याको सुलझाना है। कवितामें माधुर्य आदि गुण सत्य और सुन्दरको पर्याय बना देते हैं और यही कारण है कि वेदनात्मक चित्रण भी प्रद और सुखावह हो जाता है।

कविता जब सभी प्रकारका सौन्दर्य-चित्रण करती है तो शब्द-सौन्दर्य भी उससे नहीं है और इसी कारण हमारे आचार्योंने अलंकारशास्त्रको काव्य-शास्त्रका एक

क्योंकि सांसारिक वस्तुओंको इस प्रकार सम्यक् करना और इस प्रकारसे एक दूसरेकी सुसङ्गति या तारतम्य बतलाना, जैसा कभी नहीं बताया गया है, कालान्तरमें वह मानसिक स्थिति उत्पन्न कर देता है जिसके कारण भाव-चित्र भाव-चिह्नमें परिवर्तित हो जाते हैं। फलतः, यदि पुनः अच्छे कवि न उत्पन्न हुए तो भाषाकी अभिव्यञ्जना-शक्ति रुक जाती है। इसीलिए कहा गया है कि, समाजकी प्राथमिक स्थितियोंमें प्रत्येक लेखक कवि होता था; और अब भी अनुभूत होता है कि प्रत्येक नवयुवक कुछ न कुछ काव्यमय भाव रखता है। अपनी प्राथमिक स्थितिमें समाजके तथा नवयौवनमें मनुष्यके भाव निकटतः एक ही होते हैं क्योंकि भाव एवं भाषा उस समय काव्यमय हो जाती है।

कवि किसे कहते हैं ? उसका कार्य क्या है ? वह किसे संबोधित करता है और उसे किस प्रकारके माध्यम अर्थात् भाषाद्वारा संबोधित करना चाहिए ?—कविमें भावना-शक्ति अन्य मनुष्योंसे अधिक तीव्र होती है, उसका उत्साह और जीवनके प्रति भाव अधिक उत्तेजित होता है, उसकी आत्मा अधिक उदार और विस्तृत होती है और वह जो कुछ कहता है अपनेको या अपने जैसे दूसरे मनुष्यको संबोधित करके व्यक्त करता है। वह अपनी ही रागात्मिका प्रवृत्तियोंमें मग्न रहता है, जीवनके विविध अंगोंपर वह अपनी तीव्र दृष्टि डालता है, संसारकी गतिमें जो मानव-प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं उनको वह वाणी देता है और जो अदृश्य रहती हैं उनको प्रकाशमें लाता है। साथ ही साथ उसमें एक और प्रवृत्ति होती है जो अ-कवि मनुष्योंमें नहीं पाई जाती,— वह अनुपस्थित भावोंका भी चित्रण करता है और इस प्रकारसे करता है जैसे वे उपस्थित ही हों। वह उन भावोंको भी व्यक्त करता है जो केवल दूसरे लोगोंद्वारा ही अनुभूत हुए हों और इसीलिए उसमें अभिव्यञ्जना इतनी अधिक मात्रामें उत्पन्न हो जाती है कि वह उन भावोंको, कारण न होते हुए भी, अपने हृदयमें उत्पन्न कर सकता है। इस तरह, कविको सर्व-भूत-हृदय बनना पड़ता है।

कविके हृदयमें सौन्दर्यकी पूर्णता भरी रहती है। वह सौन्दर्यके शाश्वत स्वरूपको पहिचानता है। जहाँ सहृदय श्रोताओंमें केवल भावयित्री प्रतिभा होती है वहाँ कविमें कारयित्री प्रतिभा होती है जो उसी वृक्षके उसी बीजको उसी रूपमें उगाते हुए भी विभिन्नता और नवीनता प्रदान कर देती है और, साथ ही, मनुष्यमें जो कुछ पवित्रता है अथवा निमग्नमें जो कुछ नैतिकता है उसके साथ पूर्ण सहानुभूति और सहज सद्भाव प्रकट करते हुए महत्ता और उदारताको पूर्ण आदर देती है।—यही नहीं, सारे संसारके सौन्दर्य और महत्ताको एकत्रित करके वह एक अपना ही संसार खड़ा करती है। इस प्रकार अपने लोकका निर्माण करके कवि संस्कृत और आज्ञेयी माध्यमद्वारा सहृदय पुरुषोंको आकृष्ट करके उसमें वसता है। मनुष्योंको आकर्षित करनेके लिए वह अलंकारोंका प्रयोग करता है क्योंकि साधारण शब्द इतने निर्वल्य होते हैं कि वे गंभीर और

उदार भावोंका भार वहन नहीं कर सकते। साथ ही, अमूर्त भावोंको साकार करनेका और साधन ही नहीं है इसलिए अलंकारोंका साधन गौण होते हुए भी अनिवार्य हो जाता है। इस दृष्टिसे यह भी कहा जा सकता है कि छन्दका आवरण भी उचित रूपसे ही काव्यपर चढ़ाया गया है क्योंकि छन्द कविके अन्तर्नादका वाष्प स्वरूप है। अतएव, छन्दका प्रयोग भी कविकी प्रतिभाका परिचायक है न कि बाधक, क्योंकि कवि उसे अपनी स्वतंत्र बुद्धिसे प्रयुक्त करता है। वह शाश्वत गान, जो कविके हृदयमें ध्वनित हो रहा है, अलंकारके वायु द्वारा संचालित होकर छन्दकी भित्तिपर प्रतिध्वनित होता है। कविता संगीतमय विचार है और कवि वह है जो संगीतमय ढंगसे सोच सकता है।

कवियोंके मस्तिष्ककी वनावट ही दूसरी होती है। उनके विचार और भाव स्फोटिक-द्वारा एक दूसरेसे संबद्ध रहते हैं। यही सबे कविकी पहिचान है कि उनके जीवनमें उपयुक्त सिद्धान्त अनवरत कार्य करता रहता है। और, जिन्होंने केवल अभ्यासद्वारा कविता सीखी है उनके लिए कविता करना एक गौण बात है। ऐसे कवि पहले अपने भावोंको गल्लमें नियत कर लेते हैं और फिर पद्यमें बदल देते हैं। परन्तु, सच्चा कवि अपने विषयको कवितामें ही देखता है। अभ्यासद्वारा कविता करनेवाले कवियोंकी कृतियोंमें विचारकी प्रधानता होती है,—अलंकारसे रस दूढ़ जाता है, क्योंकि उनका तो एकाग्र उद्देश्य यही है कि वह भावोंका आवरणमें अपने विचार उपरिधत करे; परन्तु, सहजकविकी कवितामें रसका अतिरेक होता है। वह विचारोंका गौण स्थान देता है। उसकी कृतिमें अलंकारोंका विशिष्ट स्थान नहीं मिलता। वह तो अपने भाव-प्रवाहमें

अधिक अंश जिस कविकी कृतिमें होगा वह उतना ही नडा कवि होगा। महाकवि वह है जिसकी कवितामें विचार, भाव, व्यक्तित्व, कल्पना, प्रवाह आदि अत्यधिक मात्रामें उपस्थित हैं। ऐसे कवि विश्व-कवि कहे जाते हैं,—इसलिए नहीं कि वे सारे संसारमें प्रसिद्ध हैं, वरन् इसलिए कि सारा संसार उनमें उपस्थित है।

कवियोंकी महत्ता उनकी मौलिकतासे नापी जाती है। मौलिकताका यह अर्थ नहीं है कि कवि अन्य मनुष्योंसे भिन्न हृदय रखता हो। कवि मानव-समाजमें रहता है, घटना-चक्रों और पात्रोंके मध्यमें विचरण करता है और मनस्तुष्टिके लिए उनका चित्रण करता है। उसकी दशा उस मकड़ीकी भाँति होती है जो अपने पेटसे जाल निकाल कर एक चक्र बना देती है। सभी स्थापति, चाहे जैसा उनको मकान बनाना हो, ईंट चूनेका प्रयोग तो करेंगे ही। इसीलिए, कहा गया है कि, सर्वोत्तम प्रतिभाशाली कवि सारे संसारका ऋणी होता है। कवि कोई विज्ञित मनुष्य नहीं होता जो, जो कुछ हृदयमें आवे, व्यक्त करता जाय; वरन् उसका हृदय देश और कालके द्वारा सीमित तथा मर्यादित होता है। कवि प्रभात-कालमें उठकर यह नहीं सोचता कि आज मैं नवीन छन्द गढ़ूंगा, आज मैं एक नवीन अलंकारका प्रयोग करूँगा, आज मैं ऐसा भाव सोच निकालूँगा जिसे आज तक त्रैलोक्यमें किसीने न सोच पाया हो इत्यादि, वरन् वह तो उस समय अपनेको विचार-प्रवाहमें बहता हुआ पाता है और वह प्रवाह समकालीन आवश्यकताओंसे प्रवाहित होता है। कवि उसी मार्गका अनुसरण करता है जिसपर सबकी दृष्टि पड़ती है और उसी दिशाको जाता है जिधर समाजका आदर्श निर्देश करता है।

प्रत्येक महाकविको साधन एकत्रित किये हुए मिलते हैं और वह उनका उपयोग सत्यता एवं सहानुभूतिके साथ करता है। 'नाना-पुराण-निगमागम-सम्मतं' तो उसके सम्मुख रहता ही है, साथ ही 'क्वचिदन्यतोऽपि' उसे एकत्रित किया हुआ मिल जाता है। उसे कुछ भी हूँदने नहीं जाना पड़ता। अतुष्टि न होगी यदि कहा जाय कि एक महाकवि अपनी सारी भाव-संपत्ति संसारमें इकट्ठा करता है क्योंकि उसका हृदय जनताके विचार-प्रवाहका माध्यम है। सारा संसार उसीका कार्य करता है और वह अपने मस्तिष्कके माध्यमद्वारा सारे प्राणियोंके विचार व्यक्त करता है। तुलसीदासका उदाहरण सम्मुख है। हिन्दीमें उनकी श्रृंगारिका कोई महाकाव्यकार हुआ ही नहीं, वरन् उनको तो अन्य-भाषा-भाषियोंतकने विश्व-कवि माना है। परन्तु, यदि आप रामचरितमानसको तुलनात्मक दृष्टिसे देखें तो आपको ज्ञात हो जायगा कि गोस्वामीजीने अपने पूर्ववर्ती रामायण-कारोंके उत्तमोत्तम भावोंको मुक्तकंठ होकर अपनाया है,—ऐसा कुछ लिखा ही नहीं जो पूर्ववर्ती कवियोंकी दृष्टिमें न आया हो। इसपर भी संसार उन्हें महाकवि कहता है, और ठीक कहता है। रामायण तथा महाभारतके परवर्ती कवियोंमें सर्व-प्रथम अद्वघोष ही महाकाव्य-कार माने जाते हैं, उनके अनन्तर कालिदास। अद्वघोषकी छाप स्पष्टरूपसे कालिदासपर पड़ी

होगी और अनुकरणद्वारा उन्होंने अपने आदर्शके प्रति तदाकार वृत्ति प्राप्त की होगी। कविता मानव-हृदयको उच्च और विशाल बनाती है क्योंकि कविताद्वारा हृदयको भाव, विचार और तुष्टि प्राप्त होती है। कविता श्रोताकी आँखोंपरसे परदा उठा देती है जिससे वह संसारके गूढ़ सौन्दर्यको देखने लगता है और अपरिचित वस्तुओंको इस प्रकार देखता है मानो वह परिचित ही रही हों। कविता हमारे कल्पनाके वृत्तको विस्तृत करती है, उसमें नवीन आनंदके विचार भरती है तथा हमारी भावनाओंको और भी अधिक उत्तेजित करती है। अतएव, कविका यह परम कर्तव्य है कि वह हमारे हृदयमें सार्वभौम भावनाएँ भरे।

अब प्रश्न उठता है कि कविको कैसे भाव काव्य-रुद्ध करने चाहिए? अथवा, सभी देशों तथा सभी कालोंमें कविताके शाश्वत विषय क्या रहे हैं? जीवनकी घटनाएँ और मनुष्य-जीवनका घटना-चक्र, इनमें मानव-अभिरुचि स्वभावतः देखी गई है और कवियोंद्वारा इनका वर्णन अत्यन्त आकर्षक ढंगसे किया गया है। यह घटना-चक्र क्या है?

वे कार्य या घटनाएँ, जो मनुष्यकी मौलिक भावनाओंपर अपना पूर्ण प्रभाव डालती हैं, मनुष्य-जीवनमें सर्वत्र विद्यमान रहती हैं और समयका इनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चूँकि यह भावनाएँ शाश्वत और समान हैं, इसलिए, कविताके विषय भी शाश्वत और समान हैं। अतएव, किसी घटनाके प्राचीन या आधुनिक होनेसे कवितापर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। जो कुछ उच्च और महान है वह हमारे हृदयको रुचिकर प्रतीत होता है और जो कुछ रुचिकर है वह काव्यका विषय है। सहस्रों वर्ष पुराने घटना-स्थल, यदि वह महत्त्वपूर्ण हैं तो, आधुनिक कालमें भी उन सहस्रों घटनाओंसे अधिक रुचिकर होंगे जो उतने महत्त्वकी नहीं हैं। यद्यपि, आधुनिक विषय आधुनिक भाव और भाषाद्वारा व्यक्त किये जाते हैं, और उनमें कथित विचार प्रायः आधुनिक होनेके कारण परिचित ही होते हैं, तथापि, उनका इतना प्रभाव इसलिए नहीं होता कि वे क्षणिक और एकदेशीय भावोंको प्रदर्शित करते हैं; परन्तु, कविता हमारी शाश्वत भावनाओंको उत्तेजित करती है और जो काव्य सार्वभौम भावोंसे ओत-प्रोत होगा वह इसीलिए श्रेष्ठ माना जायगा। लिखनेका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रत्येक कविको अपनी कविताका विषय पौराणिक ग्रन्थोंसे ही लेना चाहिए। नहीं, कहनेका उद्देश्य यह है कि कविको ऐसे विषय चुनने चाहिए जो सार्वभौम हों, अर्थात् सबको रुचिकर हो सकें, महान् एवं प्रभावशाली हों,—अर्थात् श्रोता या पाठकके चरित्रपर उनका प्रभाव उन्नायक हो। एकदेशीय विषयोंपर भी उत्तमोत्तम कविता भले ही की जा सके परन्तु यदि प्रतिभाका इस प्रकार अपव्यय न किया जाय तो बहुत अच्छा।

प्रश्न उठ सकता है कि कविताका कौन-सा प्रकार सर्वश्रेष्ठ है? उत्तर है कि महाकाव्य। क्योंकि (१) इसमें सर्वोत्तम जीवनकी झलक रहती है (२) इसमें शृंगार,

चरम सीमाको पहुँच चुके हैं। परन्तु उनकी 'शक्ति'ने अपना प्रदर्शन कभी नहीं किया और न उन्होंने केवल एक ही राग अलापा। उन्होंने जीवनके विभिन्न अंगोंपर पूर्णतया दृष्टि-निक्षेप किया। एक महाकविकी कवितामें कोई विभिन्नता नहीं होती, कोई अद्भुतता नहीं होती,—वहाँ तो जो होना चाहिए वही होता है। उच्चको वह उच्च और नीचको नीच ही कहता है। परन्तु, वह ऐसा शक्तिशाली अवश्य होता है जैसी कि प्रकृति,—जो कुछ ही देरमें मरुस्थलकी रेणुका पर्वत-शिखरपर पहुँचा देती है और समुद्रके जलको वायुके रथपर बिठा देती है। महाकवि संध्याके भू-भंग और प्रभातके स्मितका चित्रण समान ढंगसे करता है।

भाषा, वर्ण, स्वरूप, धर्म तथा सामाजिक नियम आदि सभी कविताके उपकरण हैं। परन्तु, यदि हम कविताको एक सीमित वस्तु मानते हैं तो कहना पड़ेगा कि काव्य शब्दोंका, अथवा भावोंका, एक विशेष आरोहावरोह, संगति, संक्रम या तारतम्य है जो मानव-हृदयके किसी गूढ़ अन्तस्तलसे उत्पन्न होता है और जिसकी उत्पत्ति भाषाकी प्रकृतिसे संबंध रखती है और भाषाकी प्रकृति हमारे राग-द्वेष, सुख-दुःख आदिसे संबद्ध होनेके कारण नाना प्रकारके आवरण धारण करती है। भाषा कल्पनाकी कन्या है जो विचारके साथ विवाहित की गई है। भाषा भाव तथा उसके अभिव्यंजनकी एकमात्र माध्यम है। ध्वनि, विचार और भाव पारस्परिक संबंध रखते हैं,—एकका प्रभाव दूसरेपर पड़ता है। इसीलिए, कवियोंकी भाषाओं एक प्रकारकी समता और स्वरैकता सर्वत्र पाई जाती है जिसके बिना वह भाषा काव्य-भाषा नहीं रह जाती। वह भावकी अभिव्यंजनापर भी अपना अत्यधिक प्रभाव डालती है,—यहाँ तक कि कविताको एक भाषासे दूसरी भाषाओंमें अनूदित करना असंभव हो जाता है। कविताको भाषान्तरित करना कमलके पुष्पको जलाकर उसका सुवर्ण निकालना है।

काव्यमें बारम्बार एक विशेष प्रकारकी ध्वनि या शब्दका उत्पन्न होना, और कविताका संगीतसे घनिष्ठ संबंध होना,—इन दो कारणोंने छन्दकी उत्पत्ति की है यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि कविता छन्दोबद्ध ही हो। छन्दोबद्ध रचनाको ही यदि हम काव्य मानें तो कादम्बरी-कारको कोई कवि ही नहीं कहेगा और फिर 'वाणोच्छिष्टं जगत्सर्वं' झूठा पड़ जायगा, दशकुमार-चरितके 'पद-लालित्य'का कोई मूल्य ही नहीं रह जायगा और दंडीको आचार्य मानना ही एकदेशीय हो जायगा।

सारांशतः सार्वदेशीय भावोंसे युक्त मनुष्य-जीवनकी झलकका नाम कविता है। मानव-प्रकृतिमें गूढ़ तत्त्वों एवं नियमोंका याथातथ्य व्यक्तीकरण कविताका मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। कविता सार्वभौम इसलिए होती है कि वह मनुष्य-प्रकृतिका चित्रण इस प्रकारसे करती है कि यदि मानव-प्रकृतिकी सभी विभिन्नताएँ एकत्रित की जायें तो वे उसीमें समा जायें। समय उन विभिन्नताओं तथा मानव-जीवनकी घटनाओंपर अपना कोई प्रभाव नहीं रखता वरन् काव्यकी तीव्रताको और भी अधिक उत्तेजित कर देता है और कविता-गत शाश्वत सत्यको नया रूप प्रदान कर

देता है। कविता एक ऐसा आदर्श है जो विद्वानों को भी सुन्दर और सुन्दरको सुन्दरतर बना देता है। अतएव, कहा जा सकता है कि कविता मनुष्य और प्रकृतिकी प्रतिकृति है और उसका उद्देश्य मनुष्यको मनुष्य मानकर, न कि इतिहासज्ञ, ज्योतिषी आदि जानकर, आनन्द पहुँचाना है। कविता संसारके ज्ञानका सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व है अथवा, यों कहें, कविता प्रथम और अंतिम ज्ञान है। अतएव, कविता लोकोत्तर सौन्दर्यसे कल्पनाको विभूषित ही नहीं करती बल्कि संसारके दुःखोंसे निवृत्ति देकर एक भावना बन जाती है जो मानव-जीवनकी नीतियत्ताको व्यक्त करती है और ऐसे सत्य एवं पवित्र जीवनकी ओर आकर्षित करती है जो व्यावहारिक जीवनका आदर्श है।

कविताका कार्य द्विधा है। एक ओर तो वह ज्ञान, आनन्द और शक्तिके नये साधन उत्पन्न करती है और दूसरी ओर उन साधनोंको एक तारतम्यमें व्यक्त करती है जिससे उत्तम सौन्दर्य और अच्छाई आ जाती है। इस सौन्दर्यको भावकी गति और भी तीव्र कर देती है। सामाजिक जीवनमें जब ऐसा काल आ जाता है कि लोग स्वार्थ और अनुदारताके सिद्धान्तोंसे दबने लगते हैं तथा वास्तव जीवनके उपकरण आन्तरिक जीवनके सौन्दर्यको दबा देते हैं, अथवा कोई ऐसी विशृंखलता उत्पन्न हो जाती है जो मानव-हृदयको असंतुष्ट और अधीर बना देती है, तब कविताकी उपयोगिता भली भाँति प्रकट होती है क्योंकि उस समय शरीरके दोषोंसे आत्मा दब जाती है और सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जाता है। कविता ऐसे ही रोगोंकी ओषधि है।

कविता सत्यमेव दिव्य है। वह ज्ञानका केन्द्र भी है और वृत्त भी। यह वह विज्ञान है जिसके अन्तर्गत सारे विज्ञान हैं और सारे विज्ञान इस विज्ञानका सुँह ताकते हैं। कविता प्रत्येक प्रकारकी विचार-धाराओंका उद्गम और संगम-स्थान है। कवितासे सभी शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है और सभी शास्त्र कविताका आदर करते हैं। यदि काल्प-वृत्त शुष्क हो जाय तो सुख-शान्तिकी छाया और फल हमें न प्राप्त हो सके और जीवनकी प्रत्येक शाखा नीरस शव होने लगे। कविता सभी संचारिक पदार्थोंके गुणोंको बढ़ा देती है। जिस प्रकार गुलाबमें सुगन्ध रहती है अथवा सेनेमें सुवर्ण रहता है उसी प्रकार कविता साहित्य और समाजकी सुगन्धि और सुवर्ण है। यदि कवितामें वह उद्धान न होती जिससे वह ज्ञान और प्रकाश उच्च अन्तरिक्षसे खींच लानेमें समर्थ होती है जहाँ भाव और विचार पर तक नहीं मार सकते, तो सत्य-प्रेम, देश-प्रेम, भक्ति, मित्रता आदि सद्गुणोंको कौन पूछता, नैसर्गिक दृश्योंसे कौन आकर्षित होता, जीवनमें क्या रह जाता अथवा लोग मृत्युके अनन्तर किस बातकी आशा करते? उच्च कोटिकी कविता सीमा-रहित होती है। वह उच्च बीजके सदृश होती है जिसमें वृक्षका साग स्वरूप निहित रहता है। एक आवरणके अनन्तर दूसरा आवरण हटते चले जाइए, परन्तु अन्तःस्थित सौन्दर्य नष्ट नहीं किया जा सकता। महाकाल्य अथवा कोई भी उच्चतम काल्य एक धाराके सदृश है जिसमें ज्ञान और आनन्दका नीर

वहा ही करता है, जिसका उपयोग प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक गुण करके दूसरे मनुष्यों और युगोंके लिए छोड़ जाता है। सारांश, कवियोंका प्रभावा समकालीन तथा परवर्ती समाजपर अत्यधिक पड़ता है।

हाँ, कुछ लोगोंने कवियोंके मुकुटको उतारकर विचारकों, कारीगरों तथा राजनीतिक नेताओंके सिरपर रखना चाहा है। उनका कथन है कि समाजमें कवियोंकी उपयोगिता नहीं है। देखें, उनका कथन कहाँ तक ठीक है।

आनन्द अथवा उपभोग वह पदार्थ है जिसे प्रत्येक प्राणी प्राप्त करनेकी इच्छा करता है और जब वह प्राप्त हो जाता है तो वह शान्त हो जाता है। आनन्द दो प्रकारका होता है,—एक क्षणिक और दूसरा शाश्वत। उपयोगिता या तो प्रथम प्रकारके आनन्दकी वृद्धि करती है या दूसरे प्रकारके। प्रथम प्रकारके अर्थके अनुसार जो साधन हमारे रागोंको प्रबल और पवित्र बनाते हैं, हमारी कल्पनाको विस्तृत करते हैं अथवा प्रोत्साहन प्रदान करते हैं, वे उपयोगी हैं। हाँ, एक प्रकारकी उपयोगिता और भी है,—वह जो हमारी शारीरिक आवश्यकताओंको पूरी करती है, वह जो समाजको सुरक्षित रखती है, वह जो उसमें सुधारका बीज बोती है और पारस्परिक स्वार्थके लिए जो मनुष्योंको सहिष्णुता और उदारता सिखलाती है। इस प्रकार समाजकी सेवा करनेवाले नेताओंका स्थान समाजमें अवश्य है। परन्तु, वे लोग भी कवियोंके बतलाये हुए मार्गपर चलते हैं। उनकी उपयोगिता समाजमें तभीतक है जबतक वे मनुष्यके निम्नश्रेणीके विचारोंको अपनी उच्चता और उदारतासे दबाये रखनेमें समर्थ होते हैं। वे लोग राजकीय नियम बनावें, समुद्रपर पुल बाँधें तथा समाजमें दंड-विधान रचें, परन्तु जब वे सच्ची कल्पनासे व्युत्पन्न हो जाते हैं तब समाजकी वही दशा हो जाती है जो इस समय योरोपीय राष्ट्रोंकी है,—जहाँ संपत्ति और विपत्तिका नग्न नृत्य हो रहा है, जिनके पास अधिक संपत्ति है वे अधिकाधिक चाहते हैं और जिनके पास नहीं है वे उत्तरोत्तर रंक होते जा रहे हैं, जहाँ राष्ट्रकी नौका भँवर और वायु-वेगके मध्य डगमगा रही है। आसुरी संपत्तिके यही लक्षण हैं। आनन्द या सुखकी परिभाषा करना कठिन है,—कवितामें तो वह और भी दुष्कर है क्योंकि यहाँ तो कर्षण रस भी आनन्दको उत्पन्न करता है, दुःखमें भी सुखकी छाया रहती है, रागमें भी वेदनाकी झलक दिखाई पड़ती है,—यहाँतक कि सुखमें जो दुःख अनुभूत होता है वह दुःख भी कभी कभी नहीं प्राप्त होता। साथ ही यह भी नहीं है कि आनन्द-प्रकाशकी छाया दुःख ही हो। प्रेम और मैत्रीका सुख, निसर्ग-सत्कारका आनन्द, कविताके समझनेका और उससे भी अधिक करनेका सौख्य, शुद्ध, पवित्र और अनिर्वचनीय होता है। इस प्रकारके आनन्दमें अत्यधिक उपयोगिता है और जो इस आनन्दको उत्पन्न करते हैं वे ही सच्चे कवि कहलाते हैं।

सर्वोच्च मास्तिष्कवाले मनुष्योंके सर्वोपरि विचारोंका नाम कविता है। हमें ज्ञात है कि

बन जाते हैं तथा हमारी आन्तरिक दृष्टिपरसे परिचयका परदा हट जाता है जिससे हमें अपने ही अस्तित्वपर विस्मय होने लगता है। कविता हमें बाध्य करती है कि जो कुछ हम देखें उसका अनुभव करें तथा जो कुछ हम जानते हैं उसकी कल्पना करें। नित्यशः हमारे विचार इस संसारको परिणित बनाने चले जाते हैं, यहाँ तक कि हमारे हृदयमें संसारके प्रति कोई कल्पना ही नहीं उत्पन्न होती,—कवि इस संसारका विनाश करके हमारे हृदयमें एक नवीन लोक उत्पन्न कर देता है।

कवि जनताके लिए जिस प्रकार ज्ञान, आनन्द, सत्य, यश आदिके भाव उपस्थित करता है, उसी प्रकार उसे भी सबसे अधिक प्रसन्नचित्त और विनार-शील होना चाहिए। यश तो उसका सर्वश्रेष्ठ होता ही है। आचार्य मम्मटने भी कहा है 'काव्यं यशसे'। कवि होनेके कारण वह सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी और आनंदी भी होता है, यह किसीसे छिपा नहीं है। संसारके सर्वश्रेष्ठ कवियोंका चरित्र सुन्दर और निष्कलंक रहा है,—उनमें ज्ञानकी मात्रा सबसे अधिक रही है और यदि उनके जीवनके अन्तरंगको देख सकें तो वे बड़े ही भाग्यशाली महापुरुष हुए हैं। यदि हम मान भी लें कि वाल्मीकि व्याघ्र थे, कालिदास व्यभिचारी थे, तुलसीदास जैन थे, विहारी शृंगारी थे, भूषण भाट थे; तो भी, उनके काव्योंने उनके सब कलंक धो दिये और वे सुधा-घीत सौधके सदृश हमें आनन्द दे रहे हैं। कविगण ईश्वर-प्रदत्त मंत्रोंके दृष्टा हैं,—भविष्यकी जो छाया वर्तमान-पर पड़ रही है उसको प्रतिबिम्बित करनेके आदर्श हैं; वे ऐसे शब्द हैं जो, जिसे व्यक्त करते हैं, उसे समझते तक नहीं, ऐसे प्रोत्साहन हैं जो जीवन-संग्रामके लिए निमंत्रण देते हैं, ऐसे प्रभाव हैं जो स्वयं अचल हैं, तथा संसारके माने हुए अग्रणी हैं।

और कविता!—संसारके सभी सौन्दर्य उससे निःसृत होते हैं, उसीके अनुसार मानव-जीवन संचालित होता है, वही समाजका कल्याणकारी अंग है।

‘अनूप’

१—शुभ स्वप्न

दृढतविलम्बित

गिरि हिमालयके उपकूलमें

कपिलवस्तु-पुरी अति रम्य थी;

बहु प्रसिद्धिमयी धन-अन्नदा

सुभग-शासन-भूषित भूमि थी ।

विनय-युक्त उदार गर्भीर थे,

अति सहिष्णु तथा अति धीर थे;

परम न्याय-परायण वीर थे,

सतत-संयत भूपति शाक्यके ।

परम शाक्त अनूपम विक्रमी

अति पुनीत जितेन्द्रिय संयमी;

छविमयी उनकी यश-चन्द्रिका

विनत थी करती शरदिन्दुको ।

प्रकट पादस भी जब हो गया,
घन-घटा घनघोर घिरी यद्वा,
कपिलदन्त-नृपाल-प्रतापसे
सकुच-संयुत वासव रो पड़ा ।

अमित भूप-विलोचनकां प्रभा
शरदके अरविन्द न पा सके,
निरख न्याय नराल-समूह भी
सर-निमज्जन था करने लगा ।

फिर चली ऋतुकी बढ़ शीतता,
परम पिंगल आतप हो गया,
नृपतिके सम-दृष्टि-प्रभावसे
न घटता-बढ़ता बहु शैत्य था ।

शिंशिरके ऋतु-सी नृपकी कथा
हृदयमें सुख-शीतल हो लगी,
प्रकृति-गूढ़ समाज-कुरीनियाँ
सकल पल्लव-सी गिरने लगीं ।

शार्दूलविक्रीडित

पृथ्वी-भार उतारना प्रकट हो सारी रमा जीतना,
माहेयी प्रतिपालना, स्वजनको साहाय्य देना सदा,
भूमें स्थापित धर्म-भाव करना, संसारकी योजना
शौरीने यदि आठ जन्म रख की, वे एक ही जन्ममें ।

प्रकट पावत भी जव हो गया,
घन-घटा घनघोर धिरी यदा,
कापिलवस्तु-नृपाल-प्रतापसे
सकुच-संयुत वासव रो पड़ा ।

अमित भूप-विलोचनका प्रभा
शरदके अरविन्द न पा सके,
निरख न्याय मराल-समूह भी
सर-निमज्जन था करने लगा ।

फिर चली ऋतुकी बढ शीतता,
परम पिंगल आतप हो गया,
नृपतिके सम-दृष्टि-प्रभावसे
न घटना-बढ़ता बहु शैत्य था ।

शिंशिरके ऋतु-सी नृपकी कथा
हृदयमें सुख-शीतल हो लगी,
प्रकृति-गूढ़ समाज-कुरीनियाँ
सकल पल्लव-सी गिरने लगी ।

शादृलविक्रीडित

पृथ्वी-भार उतारना प्रकट हो सारी रसा जीतना,
माहेयी प्रतिपालना, म्वजनको साहाय्य देना सदा,
भूमें स्थापित धर्म-भाव करना, संसारकी योजना
शौरीने यदि आठ जन्म रख की, वे एक ही जन्ममें ।

सकल भारतवर्ष प्रसन्न हो
 कर रहा चूपका गुण-गान था;
 सुन रही वन मुग्ध रिगंगना
 सकल-गाम प्रकाम प्रमोदसे ।

सकल शिदिमयी निधि ऋषिकी
 इस प्रकार नदी चूप-राज्यमें,
 जिस प्रकार नवाबुद-नारिसे
 बड़े बड़े शालभादि अशोक्य हों ।

दाम गमामगम गूप-गमृषिका
 मन प्रजा सुख-गर्भवती हुई,
 नगरकी किंग भाँति कथा कहें,
 मीन-मेमल मेमल हो नटा ।

मद मल भय था पा-भर्मिमें,
 किंग मल भय मेमल दुर्गमें,
 मल, मल, जीम कु-प्रमक
 मल, मल, मल, मल प्रमिद था ।

प्रकट पावस भी जब हो गया,
घन-घटा घनघोर धिरी यदा,
कापिलवस्तु-नृपान्द्र-प्रतापसे
सकुच-संयुत वासव रो पड़ा ।

अमित भूष-विलोचनका प्रभा
शरदको अरविन्द न पा सके,
निरख न्याय मराल-समूह भी
सर-निमज्जन था करने लगा ।

फिर चली ऋतुकी बढ़ शीतता,
परम पिंगल आतप हो गया,
नृपतिके सम-दृष्टि-प्रभावसे
न घटता-बढ़ता बहु शैत्य था ।

शिंशिरके ऋतु-सी नृपकी कथा
हृदयमें सुख-शीतल हो लगी,
प्रकृति-गूढ़ समाज-कुरीतियाँ
सकल पल्लव-सी गिरने लगीं ।

शार्दूलविक्रीडित

पृथ्वी-भार उतारना प्रकट हो सारी रसा जीतना,
माहेयी प्रतिपालना, स्वजनको साहाय्य देना सदा,
भूमें स्थापित धर्म-भाव करना, संसारकी योजना
शौरीने यदि आठ जन्म रख की, वे एक ही जन्ममें ।

द्रुतविलम्बित

इस प्रकार प्रजा-नृपके सुखी
निवसते गत वर्ष हुए कई,
यदि कहीं त्रुटि थी, वह थी यही
सदन-अंगन नन्दन-हीन था ।

सचिव-वृद्ध-प्रजाजनके जगी
हृदय-मध्य निरंतर लालसा,
‘ इन दृगों हम भी लख लें, प्रभो !
कापिलवस्तु-नृपाल-कुमारको । ’

अथ अचानक एक निशीथमें
अघटनीय महा घटना घटी,
बरसती वह सावनकी घटा
द्रुत फटी, तड़की, कड़की, हटी ।

बहु प्रकाश प्रकाशित हो गया,
भुवन-मंडल भासित हो गया,
उदधि-ऊर्मि विचालित हो उठी,
कलित-कंप हुई गिरि-श्रेणियाँ ।

सुमन मुन्दर मूर्य-मुखी ग्विले,
दिवसके सब लक्षण व्यक्त थे,
तुमुल-घोषवती गिरि-कंदरा
कग उठी सहसा यह घोषणा—

“ भगण सम्मुख हों, अनुकूल हों,
अगनि त्याग करें स्व-कटारता,

सकल ज्ञान गे गिरि-गिन्धु भी.

प्रकट मार-मुगाधिप हो गे ।

“ गुरुज-गुरु, सभी सहजे, उठे,

जग पड़े, नमसे, मनमें गुने,

भुवन-पालक, चालक विश्वके,

प्रकट हुए तथागत हो रहे । ”

तदुपरान्त महान प्रशान्तिका

विशद राज्य हुआ नभ-भूमिपे,

कबुज-गहरसे वह घोषणा

निकल लीन हुई नभ-शून्यमें ।

घट गई घटना वह सब ही,

त्वरित ही नभ-दृश्य हुआ वही,

सघन घोर घटा द्रुत आ घिरी,

तम प्रगाढ़ हुआ अति शीघ्र ही ।

जग पड़े जन-यूथ प्रभातमें,

नव-समृद्धिमयी धरणी हुई,

घटित सो घटना गत रात्रिकी

निपट स्वप्नमयी सब हो गई ।

अकथनीय अलौकिकतामयी

गुरु-रहस्य-युता उदया दिशा,

सहित भाग्यवती युवती उषा

मुदित रागवती अब हो गई ।

जय-मधुनके गिन गायी
 मुकुट केनका जनि मग था,
 कनक-कुंदल्यो परिधायी
 निखिल भी जनि मंदिर दिव्या ।

विदमन्वन्द-निर्कुभित-कागिका
 सम अर्चवती अग्निमें बनी,
 गरि कही नह हो समानवती
 सदन हे जगना, कहना नहीं ।

सहित-शीतल मन्द मग-भक्त
 विशद वायु बहा समीप था,
 प्रगिनिनादित कुल्ल-कुपमें
 यह हुआ कि मुझे कुल हो गया ।

कपिलवस्तु-धराधिप-भागमें
 चतुर चारण गायन गा उठे;
 सुन स्वकीय महा विरुदावली
 स-महिषी नृप जाग पड़े तभी ।

नृपतिने शिवका शुभ नाम ले
 कथित स्वप्न किया जब रात्रिका,
 विपुल विस्मय-संयुत भावसे
 पुलकसे महिषी कहने लगी—

“ सब लखा जितना प्रभुने लखा
 कुछ विशेष लखा उसको सुनो,
 समझके जिसको अब भी, प्रभो,
 शिर स-संभ्रम है प्रतिरोमका ।

“ तब विनीत हुई छाया-प्रभा
 अर्जुनमें नम-नीम मग्न गगा,
 तब प्रसीन हुआ नममें, प्रभो,
 जब उठा मणि-दीपक एक था ।

“ जलज-मंदिन थी वह गमिनी,
 उचित्र था दुगुन यदि भासता,
 पर दसा उमड़ी लज्जके बर्षा
 हृदयमें मग कीतुककी कला ।

“ लग्न पड़ी निकटस्थित ऋक्ष-सी
 विदाद कान्ति विशेष प्रभासयी,
 पर तुरन्त प्रकाश-समूह सो
 बह चला मुझको लख ध्यानसे ।

“ वह स-पुच्छ, न पुच्छल ऋक्ष था,
 सहित-ज्योति, न तारक-तुल्य था,
 कलित-कान्ति, न थी मणि-सी छटा,
 बह चला मन और प्रसन्न हो ।

“ समुपभूत प्रभूत प्रभा हुई,
 वन चली पटकोणमयी छटा,
 लख उपस्थिति ज्यों धनराजकी
 कमल था गिरता सुर-लोकसे ।

“ जलज, अभ्रमुकी पद-घातसे
 निकल देव-नदी-जलसे यथा,
 गिर रहा हुत था मन शीतपै,
 ललित लाघवसे प्रतिभास हो ।

“ यदि प्रियाः निजा हृदयं मे मर्ते,
 सुखद ही कष्ट-मरण न देवता,
 पर लगे यदि सुख-भावके,
 मर्दिन दीयन भी बनना, प्रिये,

“ तदनके भयके कुल छिन्न है,
 मुदिन मानसके अनुभाव है,
 फट् बड़े, अनि मिष्ट, पन्नू ये
 मुष्टि-धूम-मगान अ-तार है । ”

इत प्रकार प्रिया-द्वग दोहके
 हुत महीन चले निज धामसे;
 सफल नित्य-शिवा कर शान्तिसं
 त्वरित राजसभा-गृहमें गये ।

गणक-वृन्द बुलाकर भूपने,
 कह अशेष कथा गत रात्रिकी,
 जरठ-ज्योतिष-पंडितराजसे
 फल सुना शुभ आगम स्वमका ।

“ भृगु-पराशरके मतसे, प्रभो,
 अमित उत्तम है फल स्वमका,
 सरस सुन्दर सावन-मास है,
 प्रकट अर्क हुआ अब कर्कका ।

“ सकल देव-नृदेव-प्रयत्नसे
 शक-कुलोदधिका शुभ चंद्रमा
 प्रकटता अब है, भरते हुए
 गगन-भूतलमें अभिरामता ।

“ त्वरित ही महिणी उदया दिशा
 अरुणको करती स-शरीर है,
 प्रकटते जिसके महि-ज्योमसे
 अघ-घनान्ध तभी मिट जायगी ।

माहिनी

“ अघ-अहि-उरगारी, द्रोह-दम्भापहारी,
 रति-पति-अरि भारी, सत्य-संकल्प-धारी,
 शम-दम-पथ-चारी, विश्व-संवोध-कारी,
 त्रिभुवन-भय-हारी, पुत्र होगा तुम्हारे । ”

१—भाग्योदय

वत्सलतिलका

वीते अनेक निशि-चासर शांभ्रतासे,
गर्भस्थ अर्भक लगा अब वृद्धि पाने,
कुक्षिस्थ जान निगमागमका प्रणेता,
माया प्रसन्न-वदना अति मोदने थीं ।

ऐसी लगीं सहचरी सहचारमें थीं,
ऐसी पगीं नृपति-नन्दन-प्रेममें थीं,
आये यथा भुवन-भास्करके बिना ही
छाई उषा मुदित हो उदया दिशापै ।

आनन्दका उदधि, तुंग हिलोर लेता,
फैला नृपाल-सदनांगनमें लखाता,
दिव्याम्बरा, गुणवती, युवती नतांगी
गाने लगीं प्रसुदिता अरुण-प्रिया-सी ।

ले ढोल मंजुल मंजीर अभीर होके
 ज्यों ज्यों स्व-कंठ-धनि-राग अलापती थी,
 हो मंत्र-मुग्ध कल-कंठ निहंग त्यों त्यों
 आ दौड़ गोद उनके गिरने मुदा थे ।

ले ऋद्धि संग अपने सब सिद्धियाँ भी
 गाना नृपाल-भवनांगन-मध्य गान्नी
 छन्नाम्बरा छविवती सुर-प्रोषिताएँ
 स्वर्गीय गीत सुस्त-संयुत गा रही थी ।

प्रासादमें रजनि-वासर गान होता,
 सर्वत्र नारि-नर मोद मना रहे थे,
 चारों दिशा कपिलवस्तु-वसुन्धरामें
 आनन्द-अंघुधि तरंगित हो रहा था ।

फैला सुवृत्त पुरसे सब राज्यमें यों
 माया हुई प्रथम-गर्भवती प्रसन्ना,
 आबाल-वृद्ध नर-नारि-समूह सारे
 होते प्रसन्न-मन मग्न विनोदमें थे ।

बन्दी सभी मुदित हो यह सोचते थे,
 'होगा कुमार यदि तो हम मुक्त होंगे,'
 क्या जानते यह कभी वह अल्प-धी थे,
 संसार-बन्दि-गृह-मुक्तक आ रहे हैं ।

हो-सी गई सकल गर्भवती धरित्री,
 स्रोतस्विनी नवल-जीवन-वाहिनी-सी, .

महात्मा विष्णुदास सदा विमलमनः ।

विष्णुदास-विष्णुदास इव भावनी थी ।

ये भाव भाव भाव भाव भाव भाव भाव

ये भाव भाव भाव भाव भाव भाव भाव

ये भाव भाव भाव भाव भाव भाव भाव

‘ भाव भाव भाव भाव भाव भाव भाव । ’

भाषा-विशेष

निद्राशील-सुनेत्र-मध्य सुखश जो स्वप्नकी ज्योति थी,

लौ होके यह जा लगी हृदयकी संचाहिका शक्तिसे,

सन्नाही-उदरस्थ-भार जबसे संभार होने लगा,

पृथ्वी भी निज अक्षर अचल हो चंचल्यमाणा हुई ।

वचन-तिलक

ऐसे विनोदमय भाव उठे सभीके,

साध्वर्य नारि-नर कौतुकमें हुए यों,

धा कौन-सा निहित भाव प्रकाश होता,

क्यों व्योम-भूतल अलौकिक भासते थे ?

भूके अभूत-भव दृश्य विलोक ऐसे

बोली लवंगलतिका प्रथना सहेली,

“ सम्राज्ञि, शीघ्र सब दोहद पूर्ण होंगे,
 है सेविका यह सदा अनुजीविनी ही,
 श्रीशाक्य-वंश-अधिदेव प्रसन्न ही हैं,
 आनन्द-मंगल करें सब स्वामिनीका । ”

शार्दूलविक्रीडित

एकाकी जिस भाँति सूर्य हरता संसारका ध्वान्त है,
 जैसे सिंह-किशोर भी गहनमें स्वातन्त्र्यसे घूमता,
 वैसा ही गृह-वंश-दीप सुत भी होता अकेला सुधी,
 देता ताप न पात्रको, न गुणको, खोता नहीं स्नेह भी ।

वसन्ततिलका

होती रहीं सकल दोहद-प्रक्रियाएँ,
 देतीं सखी-जन रहीं सब भाँति सेवा;
 ज्यों-त्यों विकारमय अष्टम मास बीता,
 आया वसन्त अति सुन्दर दृश्य-धारी ।

थी पीतिमा सुभग आतपकी अनूठी,
 निर्धूलि व्योम अति सुन्दर सोहता था,
 ख-श्वासको मुदित मादकता मिली थी,
 पृथ्वी विमंडित बनी रमणीयतासे ।

गनी उठी मुद्रित मल-सूत्रोंमें ली,
 हृदय अचानक उठी उनके अन्दरी,
 उचानमें गगन हो गंग के सरोवरी
 बाँते कई दिवस किन्तु गई नहीं थी ।

आरामका सुरभि-संयुत दृश्य देखा,
 प्रातःसर्मार बहना अति मोदमें था,
 जाना कली-निकट आनन चूमता तो
 होने प्रफुल्ल अति-आयत पुष्प नाना ।

प्रत्यक्ष देख कलियों चिटकीं वहाँ जो,
 वे हो गई सुमन सौरभ-युक्त ऐसे,
 जैसे घटा गगनमें विरती घटोंमें,
 आता कि यौवन यथा सुकुमारियोंमें ।

हैं ताल-तुल्य चटकाहट फूलमें जो,
 तो तान-गान अलि-कोकिलके अनूठे,
 जो हाव-भाव-मय मंजुल मंजरी हैं,
 तो नाचती नयनमें सुपमा नटी-सी ।

हैं कूकते पिक, अलोगण गान गाते,
 डोला सर्मार, लतिका बहु फूल फूलीं,
 हैं बोलते चटक, कीर अधीर गाते,
 आते विलोक ऋतु-नायकको वनोंमें ।

स्वामी सुगंधित सर्मार-प्रवाहका जो,
 जो चंचरीक-गणको अति मोद-दायी,
 जो कान्त है सुरभि-संगठिता कलौका,
 कंदर्पका सुहृद चारु वसन्त आया ।

सारंगने, सुमनने, नभने, पिकाने,
 पुष्पौघमें, पवनमें, महिमें, द्वियेमें,
 गुंजारसे, सुरभिसे, छविसे, स्वरोसे,
 उद्भ्रान्ति, क्रान्ति, शुचिता, मृदुता प्रचारी ।

सौन्दर्यका विभव, वृद्धि हरीतिमाकी,
 तन्द्रा-विहीन सुपमा, ध्वनि कोकिलाकी,
 आनन्द-उत्स कल-कूजन पक्षियोंका,
 आरोग्यका विभव, सम्पति सद्यताकी,

उत्सर्गकी प्रकृति, ज्ञान नवीनताका,
 आश्चर्य-युक्त अवलोकन मुग्धताका,
 झोंका, तरंग, बहु-रंग विहंग नाना,
 सारे वसन्त-छवि-संयुत हो पधारे ।

देखी उपा उदित जो उदया दिशामें,
 रानी प्रसन्न-वदना इस भाँति बोली,
 “ कोई यहाँ चतुर हो तुममें सहेली
 तो दे बता त्वरित कारण लालिमाका । ”

बोली तदा प्रथम एक सरोरुहाक्षी,
 “ होता प्रतीत मुझको विधु-आनने, यों,
 आये दिवापति नहीं अब भी इसीसे
 रक्तानना बन रही उदया दिशा है । ”

बोली स-दर्प अपरा “ प्रतिभास होता
 संग्राम-क्षेत्र यह रक्त सुरासुरोंका,
 जो चन्द्र-हेतु अति क्रोधित हो लड़े हैं,
 की मारकाट अब भाग गये कहींको । ”

बोली नृसीय नमिना जनि धीमनोम,
 “ प्राची हुई दृग्मन है जननी निशाकी,
 जानी विलोच, पनि-धाम म्य-कन्यकाको
 सो अरको मरुत अष्ट वहा रती है । ”

चौथी सनी नन लगी कहने, “ मुने तो
 होता प्रनात नभकी उस देहलीपे
 एके नृभिष्ट हरिने अपने करोसे
 चीदा छिरण्य-वपु-यश्च सन्तोष मानों । ”

भारी विचार कर भामिनि पाँचवीं भी
 बोली, “ शशाङ्क्यदने, ललित उपाको,
 कैसी अनूप बहु-रंग-विरंग-याली
 होती अहो ! प्रकट है बहुरूपिणी-सी । ”

बोली छठी छविवती युवती छवीली,
 “ प्राची रही हँस, महा यह पुंथली है,
 पीछे कहीं प्रथम प्रेमिकको छिपाया,
 स्नेही द्वितीय कर खींच बुला रही है । ”

तो सातवीं यह लगी कहने कि “ भूपै
 प्राची खड़ी यमन है करती लहूका
 हा ! कोकका, कमलका, विधुरा सतीका
 पी अन्न जो विकल घोर अजीर्णसे थी । ”

यों ही किया कथन कामिनि आठवींने,
 “ प्राची पिशाचिनि महा-भय-दायिनी है,
 हो दीर्घ-व्याहत-मुखी सुरसा-समाना
 संसारको निगलने यह आ रही है । ”

बोली लवंगलतिका गहू चातुरीसे,

“सम्राज्ञि, जो कि सखियाँ गहू भावती हैं,
सो सर्व सत्य, पर जो कुछ ध्यान आती,
क्या मैं निवेदित करूँ वह धारणा भी !

“ आता मदीय मनमें सुन नाग्य ऐसे

चन्द्रानने, कुछ कष्ट मुझसे न जाता,
कुक्षिस्थ बाल-प्रति जो भवदीय इच्छा
सो मूर्तिमान अनुराग बनी गड़ी है ।

“ सम्राज्ञि, आज भवदीय समान शुभ्रा

प्राची दिशा विलसती अति मोदमें है,
है एक ही गुण नहीं, उभयत्र देखा,
दोनों अनेक गुणमें सम भासते हैं ।

“ सौन्दर्य-युक्त जिस भौति विशाल प्राची,

वैसा मनोज्ञ भवदीय ललाट भी है,
जो लालिमा लख पड़ी नभमें अनूठी,
तो आपके सकल अंग प्रभा-भरे हैं ।

“ जो पिंगता विलसती वह व्योममें है,

सो आपके वदनका प्रतिविम्ब ही है,
पुत्रोदरा वन हुई यदि आप ऐसी,
तो है उपा-उदरमें रवि ध्वान्त-हारी ।

“ होते यथा उदित पूषणके महीका

सर्वत्र दूर रहता तम है तमीका,
वैसे त्वदीय सुतके अब जन्मते ही
भूका अमंगल सभी शश-शृंग होगा ।

“ तो क्या है प्रसन्नता का नाम प्रसन्नता,
तो क्या भी सुख है सुखी प्रसन्नता,
प्रसन्नता भी प्रसन्न प्रसन्न प्रसन्न प्रसन्न
तो क्या भी प्रसन्न प्रसन्न प्रसन्न प्रसन्न है ।

“ मनो मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो,
मनो मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो,
तो क्या भी मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो,
मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो ।

मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो

“ ऐसा अंक एक है, रजनिमें जो सुप्त होता नहीं,
ऐसा कर्ण, अनूप चार-निशिमें जो बन्द होता नहीं,
है ऐसा वर हस्त, जो जगत्में निद्राक्त होता नहीं,
ऐसा है वह प्रेम, जो निरत हो आसक्त होता नहीं ।

“ तो ही अंक हो गया अचल है श्रीशाक्य-साम्राज्यपै,
तो ही कर्ण प्रपूर्ण वंश-यशके संगीनसे हो चुका,
तो ही हस्त समस्त शाक्य नृपका कन्याण धारे हुए,
तो ही प्रेम समृद्धि-धाम भवर्ताके कुक्षिमें बद्ध है । ”

वसन्ततिलका

यों ही परिक्रमण वे कर वाटिकाका
सैरांगि-संग जत्र शाक्य-नरेन्द्र-जाया

भूपालने, गणक शीघ्र बुला, कहा यों,
 “ दैवज्ञ, देव, तुम भूत-भविष्य-ज्ञाता,
 जन्माङ्ग खींच सुतका, फल तो बताओ,
 लो अन्न-वस्त्र-धन-भूषण दक्षिणामें ” ।

वेदी बनी परमपूत महा मनोज्ञा,
 थापा गया कलश दीप-समेत आगे,
 गौरी, गणेश, धरणी, ग्रह पूज बोले
 दैवज्ञ जन्म-फल दैव-विधातृका यों—

“ हे भूप, पुत्र भवदीय सुभाग्यशाली
 होगा महा प्रबल भूपति-चक्रवर्ती,
 ऐसे नरेश जगमें बहुधा न आते,
 आते कभी तदपि वर्ष सहस्र बीते ।

“ हैं सप्त-रत्न सुख-प्राप्य इन्हें महीमें,
 सर्वत्र पूज्य-पद-पंकज-युग्म होंगे,
 आकृष्टसार कर चुम्बकको हराके
 संसारका सकल पारस खींच लेंगे ।

“ आजानुवाहु अति सुन्दर शौर्यशाली
 होंगे अशेष बल-वैभव-कान्ति-वाले,
 होगा विशाल मन संश्रय भावुकोंका,
 अर्थार्थि-आर्त-जिज्ञासु-सुधी जनोका ।

“ है चक्र-रत्न, उसका फल यों कहा है,
 जो अश्व, रत्न वह भी अति सौख्यकारी,
 उच्चैःश्रवा-सम कुलीन तुरंग पाके
 होगा सुपुत्र तव इन्द्र-समान भूपै ।

“ शान्त-मनः, धर्म-राज्य-सौख्य-मयः,
 सुख-मयः स-सर्व-सुख-मयः ते,
 नील-मयः, शिव-मयः, मङ्गल-मयः,
 तेषां धर्म-मङ्गल-सर्व-सुख-मयः ”

“ शान्त-मनः सुख-मयः-सुख-मयः प्रकाशः,
 भाव-मयः सुख-मयः सुख-मयः मित्र-मयः,
 शान्त-मयः, शिव-मयः, मङ्गल-मयः,
 धर्म-मयः, जल-मयः, शिव-मयः-मयः । ”

राजा हुये मुदित और प्रसन्न ऐसे
 दो दंत एकदक ही लगते रहे वे,
 बोले तदा सचिवसे “ सब राज्यमें हों
 आनन्द, मंगल, कुशल, खेल नाना । ”

ऐसे असंख्य प्रति-धाम सजे पताके
 श्यामायमान गृह-द्वार हुये पुरीके,
 दैवी समीर चल नन्दनसे पधारा,
 आकाश-पुष्प, सच हो, वरसे धरापै ।

धाई शशांकवदनी गजगामिनी भी,
 धाई कुरंग-सख-पंकज-खंजनाक्षी,
 आई निछावर लिये सुत देखनेको,
 आई सभी सुभग मंगल गीत गानी ।

ये द्वारपै मुदित मागध-मृत गाने,
 वर्चस्व शाक्य-नृप-वंशजका सुनाने,
 पाते अपार हय-हस्ति-हिरण्य-हारे,
 हो हर्ष-युक्त ‘ जय-जीव ’ मना रहे हे

भूपालने, गणक शीघ्र बुला, कहा यों,
 “ दैवज्ञ, देव, तुम भूत-भविष्य-ज्ञाता,
 जन्माङ्ग खींच सुतका, फल तो बताओ,
 लो अन्न-वस्त्र-धन-भूषण दक्षिणामें ” ।

वेदी बनी परमपूत महा मनोज्ञा,
 थापा गया कलश दीप-समेत आगे,
 गौरी, गणेश, धरणी, ग्रंह पूज बोले
 दैवज्ञ जन्म-फल दैव-विधातृका यों—

“ हे भूप, पुत्र भवदीय सुभाग्यशाली
 होगा महा प्रबल भूपति-चक्रवर्ती,
 ऐसे नरेश जगमें बहुधा न आते,
 आते कभी तदपि वर्ष सहस्र बीते ।

“ हैं सप्त-रत्न सुख-प्राप्य इन्हें महीमें,
 सर्वत्र पूज्य-पद-मंकज-युग्म होंगे,
 आकृष्टसार कर चुम्बकको हराके
 संसारका सकल पारस खींच लेंगे ।

“ आजानुवाहु अति सुन्दर शौर्यशाली
 होंगे अशेष बल-वैभव-कान्ति-वाले,
 होगा विशाल मन संश्रय भावुकोंका,
 अर्थार्थि-आर्त-जिज्ञासु-सुधी जनोका ।

“ है चक्र-रत्न, उसका फल यों कहा है,
 जो अश्व, रत्न वह भी अति सौख्यकारी,
 उच्चैःश्रवा-सम कुलीन तुरंग पाके
 होगा सुपुत्र तव इन्द्र-समान भूपै ।

“ मानस-मन्त्र, जगत्-मन्त्र प्रोक्तवादा,
 एकान्तिका-मन्त्र-मन्त्र-मन्त्रा है,
 नीति, विद्वत्, मन्त्र, मन्त्रोंमें
 होने भिन्न मन्त्र-मन्त्र-मन्त्रा

“ शान्त है शुभ प्रिया-मन्त्रा प्रकाशी,
 भार्या मन्त्रा-मन्त्रा मन्त्रा मन्त्रा,
 सौन्दर्यमें, चरितमें, यत्नमें विन्या,
 यार्गाश्वरी, जलधिजा, गिरिनन्दिनी-सी । ”

राजा हुये मुदित और प्रसन्न ऐसे
 दो दंड एकटक ही लखते रहे वे,
 बोले तदा सचिवसे “ सब राज्यमें हों
 आनन्द, मंगल, कुतूहल, खेल नाना । ”

ऐसे असंख्य प्रति-धाम सजे पताके
 श्यामायमान गृह-द्वार हुये पुरीके,
 दैवी समीर चल नन्दनसे पधारा,
 आकाश-पुष्प, सच हो, वरसे धरापै ।

धाई शशांकवदनी गजगामिनी भी,
 धाई कुरंग-क्षत्र-पंकज-खंजनाक्षी,
 आई निछावर लिये सुत देखनेको,
 आई सभी सुभग मंगल गीत गाती ।

थे द्वारपै मुदित मागध-मृत गाते,
 वर्चस्व शाक्य-नृप-वंशजका सुनाते,
 पाते अपार हय-हस्ति-हिरण्य-हारे,
 हो हर्ष-युक्त ‘ जय-जीव ’ मना रहे थे ।

बोले महीप सुन सौख्यद विप्र-त्राणी,
 “हे हे तपोधन, महामति, भाग्य-ज्ञाता,
 अन्तर्दृग्गन्ध भवदीय विलोकते हैं
 भूकी चराचरमयी रचना सुरम्या ।

“हे विप्रवर्य्य, यह बालक आपहीका
 फूले, फले, सुख लहे, विहँसे, बड़ा हो,
 आशीष, हे सुमति, दो, ” कह भूपने यों,
 डाला प्रवीण-पदपै सुतको सुखी हो ।

ले गोदमें, चरण छूकर विप्र बोला
 “श्रीमान आप करते यह क्या, कहें तो,
 हूँ धन्य पाकर हुआ जिनके पदोंको,
 दुष्प्राप्य वे गिरिश-विष्णु-विरंचिको भी ।

“व्रत्तीस चिह्न जिनके सब मोक्ष-दाता,
 हैं अंग-अंगपर कोटि निशेश वारे,
 ऐसे महान पडभिन्न विशुद्ध ज्ञानी
 उत्पन्न होकर हुये सुत आपके हैं ।

“जो भीतिसे विषयके घन देख भागें
 वे हैं मराल मुनि-मानसके विहारी,
 होंगे स-भेद इनसे सरमें, महीमें,
 पीयूष-पाथ-सम धर्म-अधर्म दोनों ।

“उत्पन्न हैं कमल मानव-मानसोंका
 जो काम-कंटक-विहीन सदा रहेगा,
 नाना-प्रदेश-पुर-आगत भृंग-प्रेमी
 गन्धोपदेश सुख-धाम प्रकाम लेंगे ।

“ संदीप्त है सज्जनने मणि-शीर-जाग्रा,
 जो शीत-उपोति-हृत्-कोमल-कान्तिशाली,
 जो धीन हो गलितता-अवकारितासे
 होगी स्व-धर्म-प्रति भाव-प्रकाशवाली ।

ऐसा हुआ उदित सुन्दर चन्द्रमा है,
 जो नाश-राहु-भय-मुक्त सुधा-प्रकाशी,
 ऐसा हुआ उदित पूर्य्य ध्वान्त-हारी
 ‘ भूतो भविष्यति न या इति मे विचारम् । ’

यों बार बार द्विजने करके प्रशंसा,
 ले पाद-पद्म निज नस्तकैय चढ़ाया,
 दे गोश्रमें जननिनी, उसको सुनाया,
 “ सन्नाहि, अन्य भवती प्रथमा सती हैं ।

“ ऐसे मुमुक्षु-सम पुत्र न पा सकें जो
 वो युक्त है करुण कन्दन नारियोंका,
 जैसे कहो कनक-भाण्डे दिनों-दिन हों
 होयें अविचल दारों अन-हीननाम ।

कौशेय, अंशुक तथा वनसार मोती
 कश्मीर-चीन-कृत शाल विशाल-शोभी,
 थे राज्यमें वणिक जो अति मुग्ध लाये
 आये सभी अगर-चंदन-वस्तु-वाही ।

यों ही सभी स्थपति-कारु स्व-वस्तु लेके
 आते वहाँ, नृपतिसे बहु द्रव्य पाते,
 गाते कुमार-गुण, भूपतिको सुनाते,
 जाते स्वकीय गृह, मोद महा मनाते ।

भूपालसे सकल सेवक-सेविकाएँ
 पाते सभी वसन-भूषण मुग्ध होते,
 प्रासाद-कार्य करते जिस लग्नतासे
 सो देख भाग्य सुर-वृन्द सराहते थे ।

ऐसा प्रमोद नर-नारि-समूहमें था
 ज्यों पुत्र-जन्म सत्रके घरमें हुआ हो,
 आनन्द-तोयनिधि जो उमड़ा महीपै
 तो मेरु-मंदर-समेत त्रिलोक इवा ।

इंद्रवज्रा

धन्या महीमें शक-राजधानी,
 माया स-शुद्धोवन धन्य-धन्या,
 धन्या कथा श्रीवन-जन्मकी जो
 धन्या वनाती कवि-कीर्तिको भी ।

३—उन्मेष

दुतविलंबित

तज समस्त अनादि-अनन्तता,
अमित उच्च उपाधि-विहीन हो,
भुवन-मोहन बाल-स्वरूपसे
प्रभु लसे जननी-कृत-क्रोडमें ।

मकरकेतनके तनकां छटा
लग्न पड़ी हिम-गाँव गरीरपै,
जिस प्रकार घनान्त-पयोदके
पटलपै स्थित दामिनिकी प्रभा ।

पद-सरोरुहका वह लालिमा,
द्युतिमती नखकां वह श्वेतता,
जननि-अंशुक-त्रिभ्रित लालिमा,
लख त्रिवेणि-प्रभा त्रिगुनी ॥

मृग-सरोज-विनिन्दक नेत्र भी
 चपल खंजन-मीन-समान थे,
 निरखके मुखचन्द्र कुमारका
 अघ-कशा-सम थी लट हो रही ।

क्षिगुलिया शुभ पिंगल रंगकी
 रजत-राशि-समान तनु-प्रभा,
 लख पड़ी अति अद्भुत-रूपिणी,
 रजनि-रंजन आतप-युक्त ज्यों ।

उछलना, गिरना फिर गोदमें,
 बिहँसना, भरना किलकारियाँ,
 सहज-चंचल अंग कुमारके
 सुखद थे जननी-दृग-कंजको ।

पलँगसे पलनापर घालके
 जननि आनन-इन्दु विलोकती,
 तनुजको कर दोलित एकदा
 गुन-गुनाकर गायन गा उठी—

भुजंग-प्रयात

मुझे देख राजा, मुझे देख राजा,
 प्रफुल्लाब्ज-से नेत्रसे देख, राजा,
 मुदा मीन-सी आँखसे देख राजा,
 मुझे देख, राजा, मुझे देख, राजा !

इसी कान्तिको नित्य देखा करूँ मैं,
 इसी रूपको लोचनोंमें भरूँ मैं,
 इसी ध्यानको चित्तमें ला धरूँ मैं,
 मुझे देख, राजा, मुझे देख, राजा !

बना स्वर्णका उत्तरासंग तेरा,
 लसी हेमके कुंडलोंकी प्रभा है,
 तुझे प्राप्त सोना, न तू किन्तु सोना,
 मुझे देख, राजा, मुझे देख, राजा !

नहीं हाथमें तू खिलौना लिये है,
 छिपे स्नेहका दण्ड ऊँचा किये है,
 यही प्रेम-सीमा, महाराज्य-सत्ता,
 मुझे देख, राजा, मुझे देख राजा !

तुझे स्नेह दूँगी, तुझे प्यार दूँगी,
 तुझे मोद दूँगी, तुझे मान दूँगी,
 पढ़ाके-लिखाके तुझे ब्याह दूँगी,
 मुझे देख, राजा, मुझे देख राजा !

किसी भूपकी कन्यका तू धरेगा,
 किसी पाणिको पाणिमें तू धरेगा,
 इसी गोदको दोगुनी आ भरेगा,
 कहा मान, राजा, मुझे देख, राजा !

कभी आँखसे आँख तेरी लड़ेगी,
 कभी कंठमें ब्याह-माला पड़ेगी,
 कभी चित्तकी ग्रन्थिको खोल कोई,
 तुझे स्थान देगी, मुझे मान, राजा !

प्रिया-भक्ति तेरे दृगोंमें लुकी है,
महाशक्ति नन्हें करोंमें छिपी है,
बनेगा कभी विश्रुता भूप, वेदा,
यही लेख, राजा, मुझे देख राजा !

बड़ा हो कभी तू किराँटी बनेगा,
कभी देह तू भूषणोंसे सजेगा,
महाराज हो राज्य ऐसा करेगा,
त्रिलोकी कहेगा, ' मुझे देख, राजा ! '

दुतविलंबित

विहँसते पलनेपर लालको
लख, न जान सकी यह अम्बिका,
गत-विकार निरामय जीविका
सहज आनंद-युक्त स्वभाव है ।

निपट ही बट-अक्षय-पत्रके
सदृश तल्प लसा रमणीय धा,
पद-अंगुष्ठ किये मुखमें यदा
मुदित बालमुकुन्द दिखा पड़े ।

अधखुले कलि-निन्दक वक्त्रमें
दशन-युग्म प्रकाशित यों हुआ,
जिस प्रकार कला नवचन्द्रकी
निकलती कल कैरव-कोपसे ।

कमलके सग आननमें, अहो !
 दशन दो निलसे इस भौंतिसे,
 सुख-तारंगित मानसमें गया
 उच्छलके गुग बुन्द थिरा गये ।

सरस सस्मित आननमें लसी
 मधुरिमा मुलदा मुसकानकी,
 जननिके मुख-मंडल-ज्योममें
 उदित दो द्विजराज अनूप थे ।

हृदयसे अनुभूति-प्रकाशकी
 किरण दो रद हो मुलसे कहीं,
 उभय-ज्योति हुई मिल एक-सी,
 जननि होकर अद्वयवादकी ।

रदप-अंबर-डंबर-मध्य दो
 दशन-तारक तारक-मंत्र थे,
 निरख ली जिसने उनकी प्रभा
 समझ सार गया वह 'शून्य'का ।

विहँसते उनके मुख-कंजमें
 नव-प्ररोहित दाडिम बीज थे,
 निरख कौतुक-संयुत अंविता
 स्व-तन भी न सम्हाल सकी, अहो !

कमलकी छवि, कान्ति गुलावकी,
 कलित कुन्द-कली-अभिरामता,
 धनुष-बंकिमता, अलि-स्निग्धता,
 सब समूह हुई वदनाब्जमें ।

जगतकी सुयमा, अभिरामता,
 अनघता, शुचिता, सुखकारिता—
 सकल-विद्य-राहस्य-मयी बनी
 सुरभि नन्दनके वदनाञ्जकी ।

ललकना जननी-मुख देखके,
 शिक्षकना लख सेवक-सेविका,—
 सफल गौतमका बनता रहा
 सकल-बाल-चरित्र-प्रयत्न भी ।

समय बीत गया कुछ और भी
 सुखद बाल-क्रिया करते हुये,
 जब अचानक अंगनमें उन्हें
 जननिने घुटनों चलते लखा ।

सुख-तरंग उठी उर-सिन्धुमें,
 जननिके दृग निश्चल-से हुए,
 ललक दौड़ उठा, उरमें लगा,
 द्रत लगी सुतका मुख चूमने ।

फिर बिठा कुछ दूर कुमारको,
 ढिग बुला चटकाकर तालियाँ,
 कुछ दिखाकर रंग-विरंगका
 कर बड़ा करको गहने लगी ।

नृपति-नन्दनका हँसना तदा,
 खिसकना भरके किलकारियाँ,
 जननिके ढिग जाकर मोदमें
 उदरपै चढ़ना गह कंठको,

परम कौतुकसे पट खोलना,
 त्वरित एक उरोज उघाड़ना,
 भर कई चुन्नकी पय खींचना,—
 अति अलौकिकतामय दृश्य था !

अजिरमें घुटनों चलते हुए
 सुमुखमें कुल्ल वे जब डालते,
 चकित-खंजन-लोचन अंत्रिका
 त्वरित अंगुलि डाल निकालती ।

जननि अंशुक-अंवर-कोणसे
 चरणकी रज थी जब पोंछती,
 तब न थी वह किंचित जानती
 अजिन-अंवर-अंजन है यही ।

इस प्रकार सुधी जब एकदा
 अजिरमें रत क्रीडनमें रहे,
 लख प्रसन्न हुई उदया दिशा
 हँस पड़ी विधु-पूर्णप्रकाशसे ।

धबल, गोल, पयोमय पात्र-सा,
 शकल-हीन कलाधर देखके,
 गुन उसे निज क्रीडन-वस्तु वे
 मचल सत्वर रोदनमें लगे ।

पद तथा कर उच्च उछालना,
 व्यथित-से वन भूपर लोटना,
 धिलपना रजनीकरके लिए,
 अजिरमें सहसा मचने लगा ।

प्रथम, बालकका हठ ही बड़ा,

फिर कहीं यदि राजकुमार हो,

समझ ले फिर न्या गृहमें हुआ,

भय स्वगन्ध-कलेवर-वृद्धिका ।

रुदन देग बड़ी सखियों सभी,

जननि वेगवती गतिसे चली,

ललक नन्दन ले निज गोदमें

सकल शान्ति-क्रिया करने लगी ।

चिबुक चूम उन्हें चुमकारना,

सितकियों भरते लख वारना,

स्व-पटसे तनकी रज पोंछना—

जननि सर्व-प्रयत्न-वती बनी ।

मन न कार्पित पै उनका हुआ,

धुन लगी बस एक निशेशकी,

विफल यत्न हुये सबके सभी,

रुदन शान्त हुआ न कुमारका ।

कर विचार चली ललिता सखी,

परिनिवर्तित दर्पण ले हुई,

विमल बिम्ब दिखाकर इन्दुका

जननिकी करुणानिधि छट ली ।

नृपति-आलय-आंगनमें सदा

अभय जो चिड़ियाँ चुगती रहीं,

मुदित हो वह भी कुछ आ गई

निकट क्रीडन-हेतु कुमारके ।

नगरमें जितने द्रुप विप्र थे,—
 अपर पंडित भी शक-राज्यके,—
 नृपति-आज्यमें समेत थे
 उस महामहिमामय योगमें ।

सुभग सुन्दर तोरण द्वारपै,
 अजिर-मय्य वितान रचा गया,
 हवन-कुंड बनाकर की गई
 समिध-आज्य-श्रुवादिक-योजना ।

अमृत-पत्र तथा कुश-मुद्रिका
 अजिन, सारघ ले, दधि-दर्भ भी,
 गुरु-पुरोहित-पंडित-मंडली
 लग गई उपवीत-प्रबन्धमें ।

अति पवित्र वर्नी शुभ वेदिका,
 घट स-नीर, स-धान्य, स-दीप था,
 कर नवग्रह-पूजन रीतिसे
 द्विज लगे उपवीत-विधानमें ।

शार्दूलविश्रीडित

वैटे अक्षर-पीठपै जब मुदा सिद्धार्थ सिद्धाग्रणी ।
 विप्रोंने पढ़ वेद-मंत्र रचना प्रारम्भकी यज्ञकी ।
 भूयिष्ठा लख हव्य-द्रव्य-जनिता शुद्धाग्नि-उत्तेजना
 थी अध्यात्म-प्रकाश-लोक-विभवा श्री वामनाभूत-सी ।

नगरमें जितने दुध विप्र थे,—
अपर पंडित भी शक-राज्यके,—
चपति-आलयमें समवेत थे
उस महामहिमामय योगमें ।

सुभग सुन्दर तोरण द्वारपै,
अजिर-मध्य वितान रचा गया,
हवन-कुंड बनाकर की गई
समिध-आज्य-श्रुवादिक-योजना ।

अमृत-पत्र तथा कुश-मुद्रिका
अजिन, सारघ ले, दधि-दर्भ भी,
गुरु-पुरोहित-पंडित-मंडली
लग गई उपवीत-प्रबन्धमें ।

अति पवित्र बनी शुभ वेदिका,
घट सन्नीर, स-धान्य, स-दीप था,
कर नवप्रह-पूजन रीतिसे
द्विज लगे उपवीत-विधानमें ।

शार्दूलविक्रीडित

वैठे अक्षर-पीठपै जब मुदा सिद्धार्थ सिद्धाग्रणी ।
विप्रोंने पढ़ वेद-मंत्र रचना प्रारम्भकी यइकी ।
भूयिष्ठा लख हव्य-द्रव्य-जनिता शुद्धाग्नि-उत्तेजना
थी अध्यात्म-प्रकाश-लोक-विभवा श्री वामनाभूत-

फिर कुमार गये गुरु-भेदको,
 विविध-ज्ञान-उपार्जनके लिए,
 वन गये गुरु भी इस योगसे
 सकल-पंडित-मंडल-अग्रणी ।

उदरमें जिसके सब सृष्टिका
 निहित ज्ञान-निधान महान है,
 समयके अवकाशके लिए
 समयका अवकाश न चाहिये ।

लिपि लिखी गुरुने शुभ मागधी,
 लिख कहा, “सुत, ठीक लिखो इसे,”
 लिख चले लिपियाँ वह विश्वकी
 निरख श्रीगुरु विस्मित हो गये ।

खश, पिशाच, हिमालय, अंगकी,
 मग, खरोष्ट्र, तुरुष्क, कलिंगकी,
 मलय, मालव, उत्कल, बंगकी
 कुँवरने लिपियाँ लिख दीं सभी ।

विरच अंबरको जिसने तभी
 गगनकी गिन लीं सब तारिका,
 गुण असंख्य सदा जिसमें भरे,
 लघु सभी गणना उसके लिए ।

गुरु महामति गौतम-विज्ञता
 चकित-विस्मित थे अवलोकके,
 जब प्रयोग चला न द्वितीय तो
 चरणमें लघु बालक-से गिरे ।

अभि-प्रहार, प्रचालन अश्वका,
धनुस्-कर्षण, गर्भण बाणका ।

नयन-मीलनमें वह हो गये
बुझाल वेधनमें चल लक्ष्यके;
सकल शस्त्र-क्रिया उनको, अहो !
अवगता चलते चलते हुई ।

फलक-कुन्त-त्रिशूल-नादा-क्रिया
नृपति-नन्दनको जब आ गई,
तब परीक्षण-हेतु कुमारको
नृप-समीप मुदा गुरु ले गये ।

नृपतिने सुतको अति प्यारसे
ढिग बिठा दिखला तरु सामने,
यह कहा, “ उसकी लघु डालपै
बिहग है वह जो दिखला रहा

“ वध करो उसका शर एकसे
कुशलता, तब, स्वीकृत हो मुझे । ”
सुन कुमार लगे कहने, “ प्रभो,
जनक आप मदीय सु-पूज्य हैं,

“ विनय है इतनी, यदि ध्यान दें,
सदय भूरि कृपा खगपै करें;
अभय-दान, सुना, नृप-धर्म है,
बिहग आश्रित है भवदीय ही,

जब कभी हय-चादनमें हुई
 रभस होइ सवार-समूहसे
 लख पड़ा क्षणमें द्रुत दौड़ता
 कुँवरका हय अग्रग नूथका ।

लख कुरंग तुरंगम डालते,
 सु-रुचि थी अनुधावन-मात्रकी,
 लख धके मृगको हय रोकते,
 सदनको फिरते वह नित्य यों ।

गहनमें अति-धावनसे यदा
 निरखते श्रम-खिन तुरंगको,
 त्वरित ही उसको ठहरा तदा
 थपक देकर थे चुमकारते ।

रभस धावित देख कुरंगको,
 अध-खिंचा धनु लेकर हाथमें,
 तुरंग रोक कभी कुछ सोचते,
 हनन थे करते न बराकका ।

जिस प्रकार प्ररोहित बीजसे
 प्रथम अंकुर है लघु हृदता,
 फिर वही बढ़ता युग-पत्र हो
 अयुत-पत्र-वती छवि धारता ।

उस प्रकार कुमार बड़े हुए
 परम वानँद-दायक भूपको,
 उलहती वयके अनुसार हाँ
 हृदयमें करुणा लहरा उठी ।

शादुलविक्रीडित

यों ही राजकुमारको सरसता, आनन्द-संमोहिता,
 श्री, सौभाग्य, प्रसन्नता, सुभगता संग्रास्यो विश्वमे;
 सोचा किन्तु न भूल एक क्षण भी संसार क्या भेद है,
 बाधा, शोक, विशाद, कष्ट, उनको थे पुष्प आकाशके।

राजाके संग चाटुकार यदि हों तो कान ही झूक दें,
 ज्वाला हो यदि नेत्रमें महिमकी, तो आँख जाती रहे,
 सीमा-हीन स-कान हो हृदय, तो क्या देर है नाशमें,
 है साम्राज्य विनाश-हेतु उसका जो हीन-कर्तव्य हो।

ले संस्कार समुच्च भूप जगमें है जन्म लेता यदा
 होता है अकलंक उच्च कुलका कल्याणकारी दशरी,
 शिक्षा हो यदि प्राप्त बालपनसे साम्राज्य-संवानकी
 तो होता वह विक्रमी, अति बली, योद्धा, प्रतापी, तपी।

होता भूप मनुष्य ही, इसलिए आवद्ध है भाग्यसे,
 होती मुद्रित मौलियै नृपतिके संसार-शांतोष्णता,
 पाता भूमृत शान्ति त्याग-पथसे, आक्रान्त हो क्रान्तिसे
 जाता काननको सुधी जरुह हो या हीन हो राज्यसे।

४—अनुकम्पा

शित्तरिणी

उपा लोका रम्या दिवस-मुखमें राग भरके
हँसी ज्यों ही भूपै प्रकट नभमें भास्कर हुआ,
विहंगोंकी बोली श्रवण-सुखदायी सुन पड़ी,
चले सारे-साथी-साहित तब सिद्धार्थ वनको ।

वसस्थ

निशाचका पूर्व-पदी प्रभात था,
अनुष्णता थी सुखदा नर्मामें.
हुई समालोकमयी वसुन्धरा,
महा पिशंगा प्रथमा दिशा लसी ।

सुगंध-शेषा गति वायुकी हुई,
सितांग-शेषा लव चन्द्रिका पड़ी,

मुहूर्तमें ही अरुणागणी चला
 स-गुच्छ-बन्धूक-प्रभा विदारता,
 उठा महा रक्तिम कीर-जुंड-सा,
 सु-दिग्वधू-कंकण-सा तमितहा ।

सन्मोद सिद्धार्थकुमार अद्वपै
 सवार हो, ले सँग देवदत्तको
 मृगव्यके व्याज चले अरण्यको
 दिवाचरोंकी पशु-वृत्ति देखने ।

बनी हुई थी पुर-राजमार्गमें
 अनूप शोभामयि पण्य-वर्धिका,
 प्रयाण प्यारे नृपके कुमारका
 विलोकती थी जनता समुत्सुका ।

अनूप सिद्धार्थ-स्वरूप देखके
 प्रजा हुई हर्षित रोम-रोम यों,
 धिंरी घटा ज्यों घनकी विलोकके
 कदम्बके पादप-पुंज फूलते ।

नरेश बैठे अपने निवेशपै
 विलोकते थे चलना स्व-पुत्रका,
 अदृष्ट अन्तःपुरके गवाक्षसे
 निहारती थी महिषी कुमारको ।

कभी घुमाते वह सिन्धुवार थे,
 कभी चलाते कुछ धैर्यसे उसे,
 कभी दिखा चाबुक थे उछालते,
 कभी नचाते बहु एड़ दे उसे ।

पुष्पगङ्गा बलिगत डाल-डालपै,
 विहंगका कूजन पात-पातपै,
 मिलिन्दका गुंजन फल-फलपै,
 विलोक आनन्द कुमारको हुआ ।

अरण्यके दुर्गम मार्गसे यदा
 बड़ी ह्याखड़ कुमार-मंडली,
 इतस्ततः सेचर भागने लगे,
 लया तथा तीतर झाड़में छिपे ।

मयूर बोले, अहि भूमिमें धँसे,
 उड़े रसालस्थित चाय वेगसे,
 कलिंग भागे, कुररी छिपी कहीं,
 विहाय कासार उड़े बलाक भी ।

लखी यदा पादप-हीन आयता
 वसुन्धरा कानन-मव्य-वर्तिनी,
 तरंगिणी थी बहती प्रवेगसे
 सुवर्तुलाकार-प्रकारसे जहाँ ।

समूह एकत्रिण हों गया बही,
 सभी भट्टने अण-एक शान्ति ली,
 तदा समाधोजन-दन-चिन्त वे
 मृगश्रका वान विचारने लगे ।

तुरन्त ही एक मंगल-शक्तिकी
 ललाम लेखा जब अयोधमें पड़ी,
 विलोक वर्षागम जे समीप हो
 प्रवेगसे मानन-ओरको चली ।

मनोरमा सुन्दर अर्ध-वृत्त-सी,
 समुज्ज्वला मौक्तिक-द्राम-सी लसी,
 निसर्गकी स-स्मित दन्त-पंक्ति-सी
 चली महा मंजु मराल-मंडली ।

उदग्र-ग्रीवा रजनीश-रश्मि-सी,
 स-धैर्य-उत्तोलित पुच्छ-पक्ष थी,
 सटे हुए थे पद-युग्म पेटसे,
 स-हंस-हंसी उड़ती स-हास थी ।

मराल-माला लख देवदत्तकी
 प्रवृत्ति हिंसामय शीघ्र हो गई,
 दुरन्त नाराच कड़ा निपंगसे
 चढ़ा स-टंकार शरास शीघ्र ही ।

स-शब्द नाराच चला भुजङ्ग-सा,
 अमोघ छूटा वह रामबाण-सा,
 लगा महाकाल-त्रिशूल-सा जभी
 गिरा स-कृंकार मराल भूमिपै ।

कुमार दौड़े सुन हंसकी व्यथा,
 उगा दया-भाव दया-निधानके,
 निकाल नाराच तुरन्त पक्षसे,
 लगा गलेसे चुमकारने लगे ।

पुरा यथा धूलि विहाय रामने
 स-हर्ष दी सद्गति वृद्ध गृद्धको,
 तथैव सिद्धार्थकुमार हंसपै
 हुए दयाशील महान प्रीतिसे ।

त्रिलोक-नग्रा जगदेक-हेतुकी

महाभुजा, कल्प-लता-प्रगृहिणी,
प्रगाढ़ छाया करती अधीनपै
समाप्त होता भव-ताप आप ही ।

कुमारके अंक मराल देवके

लगा उसे सेवक एक माँगने,
कहा, “ हुआ खेचर देवदत्तका
अतः कृपानाथ, मुझे प्रदान हो ।

“ स्व-पक्ष-नामी जब था, स्वतन्त्र था,
न था किसीका अधिकार हंसपै,
विहंग हो आहत देवदत्तसे
हुआ उन्हींका, कृपया प्रदान हो । ”

परन्तु सिद्धार्थ मराल-पृष्ठपै

फिरा फिरा हाथ सुधार पक्ष भी,
सुवाक्य बोले, “ कह, स्वीय स्वामिसे
शकुन्त दूँगा न कदापि मैं उसे ।

“ न स्वत्व है भक्षकका मृगव्यपै,

मरालका रक्षक मैं स्वतन्त्र हूँ,
अतः न दूँगा खग देवदत्तको
कहो कि आखेट करे वनान्तमें । ”

तुरन्त लौटा जन, देवदत्तसे

कहा “ अनुज्ञा यह है कुमारकी
कि आप जायें कृपया वनान्तको
करें प्रतीक्षा न कदापि देवकी । ”

मत्तल-पीड़ा-अनिच्छिन्न दुःख ये
न जानते भूतलमें कदापि थे,
परन्तु ध्यानस्थ विराज मूर्खी
विचारने विस्त-व्यथा-कथा लगे ।

अभी अभी दृश्य विलोक ग्रामका
यहाँ पधारे तब चित्त मुग्ध था,
लखा जमी जीव-व्यथा-प्रकार तो
बृथा लगा कंटक-पूर्ण पुष्प भी ।

कुमारके सम्मुख घोर घाममें
किसान प्रस्वेद-प्रपूर्ण-देह था,
चला चला बैल महान धैर्यसे
धमी उठाता सुख-हेतु दुःख था ।

समस्त प्रस्वेद-प्रपूर्ण गात्रपै
जमी हुई पुष्कलरेणु-राशि थी,
परन्तु तो भी वह बैल पीटता
चला रहा था निज नाव रेतमें ।

निहारते ही अति तीव्र दृष्टिसे
त्रितापसे तापित विश्वको लखा,
निमग्न देखे जन राग-द्वेषमें,
विपन्न देखे भव-जन्य दुःखसे ।

पतंग तो दादुर-चर्व्यमाण है,
भुजंगसे भेक निगीर्यमाण है,
टिजिह भी खाद्य हुआ मयूरका,
शिखी बना लुब्धक-भोज्य-वस्तु ही ।

शार्ङ्गविनीति

जो ही थे करते विचार मनमें सिद्धार्थ बैठे हुए,
 नृप संसृतिके हुए निरत यों कल्याणके ध्यानमें,
 किसी मर्मर-मूर्ति देह उनको पद्मासनस्था लसी,
 हो साम्राज्य विराजमान महिर्पे मानो तुरीया दशा ।

जीवोंपे उनदी अपार करुणा, चिन्ता उठी चित्तमें,
 यों ध्यानस्थ हुए कि भान उनको भूला कई यामलीं,
 ऊँचा भाव उठा विभिन्न करके सीमा अहंकारकी,
 देखा चार प्रकारका प्रथम जो सोपान है धर्मका ।

द्वुतविलम्बित

गगनमें रवि निधल हो गया,
 पवन रुद्ध हुआ कुछ कालको,
 फिर सन्वेग निवर्तित हो गई
 प्रथम-मानस-वृत्ति कुमारकी ।

उधरसे निकले कुछ देवता,
 सज विमान विनोद-बिहारको,
 उड़ सवेग रहे वह थे, अहो !
 चिटपपे सहसा रुक ही गये ।

चकित होकर वे सब खेदमें
 तनुरुहाञ्जित, तर्क-दृढ़ी बने,
 लख पड़े उनको तरुके तले
 प्रभु अमानव मानव-रूपमें ।

गगनसे उतरे तब गानको,
 दूत प्रणाम किया अधिदेवको,
 फिर चले निज निभित देशको,
 प्रभु-कथा कहते-गुनते हुए ।

“ सुभग सुन्दर भारत भग्य है,
 न भरणी इसके सम अन्य है,
 जगत-ताप विनाशनके लिए
 प्रभु यही अन्तीर्ण हुए सदा ।

“ तृपित संसृति थी भव-तापसे,
 अमृतका मृदु मानस पा गई,
 तिमिरसे अवरोधित धाममें
 जगमगाकर दीपक आ गया ।

“ यह वही जग-दीपक है जिसे
 अयुत भानु-कशानु न पा सके,
 छविमयी अपनी शुभ ज्योतिसे
 जगतको चमकाकर जायगा ।

“ तिमिरमें प्रतिभासित सर्वदा
 यह वही जगका मणि-दीप है,
 मल-विहीन, सु-शीतल ज्योतिसे
 हृदयको चमकाकर जायगा ।

“ यह वही शुभ तारक है कि जो
 गगनमें उगता कुछ देरसे
 पर स्वभाव-प्रसिद्ध अचूक है
 पथ-प्रदर्शक नाविक-वृन्दको ।

यह अगंठित पूर्ण निरोध है,
 यह प्रताप-प्रकाश दिनेश है ।
 मृदु निरोध, प्रचंड दिनेश है,
 यह निरोध-दिनेश-अशेष है ।

शार्दूलचिन्तित

दोनों लोचन-मध्य दृष्टि अचला, पद्मासनस्था दशा,
 नासाके स्वर-साम्यसे सहज ही आधार दे प्राणको,
 अन्तर्भूत प्रभूत ज्योति विभुकी साकार हो आ गई,
 शून्याम्भोधि-निमग्न बुद्ध जगको सद्धर्म-संवोध दें ।

५—अवरोध

मन्दाक्रान्ता

जैसे जैसे सुत बढ़ चला, भूपने मोद माना,
आज्ञा की यों “ नव गृह बनें तीन आनन्ददायी,
मेरा प्यारा तनय अब तो प्राप्त कैशोर्यको है,
इच्छा प्यारे तनुजवरको सौख्यके दानकी है । ”

राजाज्ञासे स्थपति-गणने हर्म्य ऐसे बनाये,
वर्षामें जो सुखद अति थे शीतमें, ग्रीष्ममें भी,
नीले, पीले, सित सुमनके वृक्ष चारों दिशामें
शोभावाले प्रचुर विटपी भी लगाये गये थे ।

प्रासादोंमें दिवम कटने शान्त मिद्वार्थके थे,
खाने, पीते, शयन करते, मोद पाते महा थे,
आ ही जाती हृदय-तलपे किन्तु चिन्ता कभी थी,
छा जाती यों धवल जलपे श्यामला मेघ-माला ।

संस्कृत-विद्या

- राजा इष्ट चक्षित जान कुमार-चिन्ता,
आमात्यसे यह लगे कहने दुग्गी हो,
“क्या बात है, सचिव, भाग्य आपको भी,
जो थे कर्मा कर गये गणकाप्रणी थे !
- “या तो सुगस्त-अरि-मंडल-भग्न-कारी
होगा सुपुत्र यह शासक-चक्रवर्ती,
या तो पुनः कठिन भिन्नक-वृत्ति-धारी
होगा,—न जान पड़ता यह क्या करेगा !
- “ऐसी प्रवृत्ति इसकी कुछ ही दिनोंसे
हूँ जानता कि बढ़ती अधिकाधिका है,
कोई उपाय इसका मुझको बताओ,
चिन्ता-विहीन मन राजकुमारका हो ।”
- आमात्य बद्ध-कर हो इस भाँति बोला,
“संभोग ही सफल ओषधि योगकी है,
सिद्धार्थके सरल मानसपै विद्या दो,
सम्पुष्ट जाल-सम विभ्रम नागियोंका ।
- “मानी गई नदनकी प्रनुता अजेया
कान्ता-कटाक्ष-विशिखाहत चित्त-द्वारा,
है कौन जीव जगमे बलने बंच जो
आकृष्ट-चाप रति-नायकके शरोसे।
- “संसारमे बहुत है कृत-कृत्य धन्वी
जो एक वस्तु भगने करते द्विधा हैं,
धानुष्क शक्तिधर है स्मर ही अकेला,
जो एकता विरचता युग वस्तुओंमें ।

“गो-बाल, भूप, वन उद्यत भागता जो,
हैं बाँधते जन उसे दृढ़ रज्जुसे तो,
कान्तार-मय्य तत्र लौं मृग कूदता है,
आपुंख-मग्न शर सो जत्र लौं न खाता।

“प्रस्ताव है कि यदि उत्सव एक होवे,
एकत्र काम-वनमें सुकुमारियाँ हों,
सिद्धार्थके कमल-कोमल हस्त-द्वारा
होवें पुरस्कृत, तदा निज गेह जावें।

“सिद्धार्थ रूप, गुण, विभ्रम नारियोंके
देखें यदा सुरति-भाव-प्रदत्त-चेता,
विश्वस्त एक चतुरा रमणी विलोके,
हैं लक्ष्य आर्य वनते किसके शरोंके।

“कोई अवश्य उनका मन खींच लेगी,
होगी वहाँ परम रूपवती कुमारी,
सिद्धार्थको प्रणय-गर्भ-गिरा सुनाके
जो स्वर्ग्य-सौख्य-मय लोचनसे लखेगी।

“सीमा वही प्रवल रूपवती बनेगी,
सिद्धार्थका तरल मानस बाँधनेकी,
संपुष्पिता भुज-लता तरुणीजनोंकी
है पाशमें तरुण-पट्टपद बाँध लेती।”

वार्ते सुनी सचिवकी नृपने कहा यों,
“हे धुर्य, शीघ्र पुरमें यह वृत्त फैले,
हो ज्ञात ज्ञाति-जनको, सब क्षत्रियोंको,
सिद्धार्थ-हेतु यह उत्सव हो रहा है।

“ जो सर्वश्रेष्ठ बहु-सुन्दर सुन्दरी हो
 होगी कन्ध मम राजकुमारकी सो,
 चारों दिशा प्रकट हो यह घोषणा भी—
 होगा वसन्तपर उत्सव सौख्यदायी । ”

मन्दारान्ता

आज्ञा फैली शक-नृपातिकी देशमें शीघ्रतासे
 होनेवाला परिणय महा मंजु सिद्धार्थका है,
 आया क्यों ही दिवस मधुकी पुण्यदा पंचमीका,
 वाला आई सुभग गुणमें, रूपमें, शीलमें भी ।

द्रुतविलिम्बित

चल पड़ीं सुसुखी सुकुमारियाँ
 सुभग अन्वर भूषण साजके,
 उड़ चली उनके अँग-रागकी
 मदन-मादन मंजु सुगन्ध भी ।

सुमन-गुच्छमयी कवरी लसी,
 सरस चिक्कण कुन्तल-न्यास था,
 रचित-रोचन भाल-विशालका
 अति अलौकिकतामय रंग था ।

नयन-मोहन अंजन-हीन भी
 कमल-पत्र-विनिन्दक नेत्र थे,
 कलित कुंडल मंजुल कर्णमें
 चपल चालित थे सुख दे रहे ।

उधर थीं धनि मंजुल मुन्दरी
 सकल मन-समागत-धौवना,
 मृगच्छरी, सरसीरुद्र-धौवना,
 नयनया नयन-सुति-संयुता ।

इधर थे अति दान्त स्वभावके
 कपिलवस्तु-धराधिप-लाइले,
 लसित था जिनके वदनावज्रपै
 अति अलौकिक भाव विरागका

समद-वारण-विभ्रम-गामिनी
 सब समुत्सुक थीं उपहारको
 निकट आकर शाक्य-कुमारके
 दग झुका कुछ लेकर लौटतीं ।

सुगम थी गति मन्द मराल-सी,
 नयनकी नति थी सुखदायिनी,
 मुसकराकर हाथ पसारतीं,
 सरस हो गंहतीं उपहार थीं ।

छविवती गुण-धाम कुमारियाँ
 परम मुग्ध पुरस्कृत हो चुकीं,
 रह गई वस एक यशोधरा,
 बैठ चुका सबको उपहार था ।

पहुँचके वह पास कुमारके
 विपुल-विभ्रम-युक्त खड़ी हुई,
 दग मिलाकर, चंचल भौंहसे
 'कुछ मिले मुझको' कहती हुई ।

कुटिल भ्रू, युग लोचन धंक थे,
 पलक धे उसके नत शीलसे,
 नयन-कोण विलास-विकास थे
 कमल-युक्त विभाकर-भाससे ।

कुटिल भौंह शरासन-सी लसी,
 बन गये युग लोचन व्याध-से,
 मन कुरंग-समान कुमारका
 क्षत हुआ शर-तुल्य कटाक्षसे ।

अति अलौकिक सुन्दरतामयी
 निरख उज्ज्वल आननकी प्रभा,
 तरल मानस शाक्य-कुमारका
 द्रुत अतीव तरंगित हो उठा ।

नवल अंकुर भी अनुरागके
 द्रुत उठे तनपै मिस रोमके,
 जब अपांग-निपातन-पंडिता
 वह हुई समुपस्थित सामने ।

शरद-चन्द्र-विनिन्दक वक्त्रको
 निरख कंज हुए छवि-हीन थे,
 लख पड़ी उस काल यशोधरा
 सहित-मंजु विलास हरिप्रिया ।

दृग विलोक कुरंग सलज्ज थे,
 चकित खंजन स-भ्रम मीन थे,
 तनु-प्रभा तप-भूति-समुज्ज्वला
 रत्न बनी सुखदा मयना-मुता ।

गमनमें नवना कर्णो-समा,
 नयनसे रचिग हरिणी-समा,
 शशि-कला-वदना रजनी-समा,
 वह चर्चा प्रमदा तरुणी-समा

सुविमयी अति धन्य यशोधरा,
 विशिखसे जिसने स्व-कटाक्षके
 श्रवणलों भुवका धनु तानके
 क्षत किया मृग-राज-कुमारको ।

वदन-सोम, सुवाक्य सुधा-भरे,
 अगदधाम विशाल कटाक्ष धे,
 जगतमें अति धन्य यशोधरा,
 अमृत है जिसकी सुखदा कथा ।

विधि-विधान कहाँ जड़ता-भरा;
 वह महा चतुरा युवती कहाँ !
 विदित भेद हुआ; शिव-भाँतिसे
 मदनने रति-रूप बना लिया ।

सब गला विधिने शशिकी कला
 अमृतका उसने फिर योग दे,
 अगद क्या विरची बहु यत्नसे
 विरति-खेद-प्रसक्त कुमारकी ?

रणित भूषणसे जिसने किये
 बहु हताहत यूथ मरालके,
 वश किया उसने शक-नाथको
 शिथिल-मुग्ध-मृगेक्षणसे, अहो !

कमल थे, मृग थे किं सु-नेत्र थे,
 विहग थे, शिव थे कि उरोज थे,
 मुकुर था, विधु था कि मुखाब्ज था,
 तडित थी, रति थी कि यशोधरा ।

कुसुम जो अलिसे न छुआ हुआ,
 सुभग मौक्तिक जो न त्रिधा हुआ,
 हृदय जो अवलौं न दिया हुआ,
 वह विलोक विमुग्ध कुमार थे ।

कणन कंकणका कमनीय था,
 सुखद था अतिवर्पण कान्तिका,
 छविवती वह साज-समाज थी
 कुसुम-शायकके अभिप्रेककी ।

अधरपै स्थित ईपत हास था,
 दृग जुड़े दृगसे शकनाथके,
 त्वरित ले निज हार कुमारने
 उस सुधा-निधिको पहना दिया ।

वैट चुका उपहार समस्त था,
 रह गया कुछ शेष न पास भी,
 पुलक-संयुत राजकुमारने
 हृदय दान किया सँग हारके ।

नयन दो वन चार गये जभी
 प्रणय एक हुआ युग-चित्तका,
 तत्र पुरातन जन्म-कथा उन्हें
 अवगता क्षणमें वह हो गई—

जब कुमार गे मुन गोपक
 मुमुनि थी यह सुन्दर गोपिका,
 विचरने यमुना-उपश्रुतमें
 रहित-पाप अमाप प्रमोदसे ।

सँग लिये सुगन्धायक कन्यका
 विरचते बहु खेल स-मोद थे,
 सकल अन्य कुमार-कुमारिका
 विहरते उनके सँगमें सुखी ।

दिवस एक, रचा जब खेल था
 परम कौतुक-कारक चित्तको,
 नयन-मीलनकी कर योजना
 सब समूह हुई सुकुमारियाँ ।

सरस विभ्रमसे जब एकके
 बन-जुही रच केश-कलापमें,
 अपरके शिरपै सुखसे रचा
 मुकुट मंजुल मंजु मयूरका ।

सुभग मेचक-कंठ विहंगके
 असित पक्ष मनोहर रंगके
 जब किसी वनिता छविधामके
 श्रवणमें रखके विहँसा दिया ।

कदलिके आनि आयल पत्र-से
 नयन मीलित थे सबके किये,
 जब चले वन-वृक्ष टटोलते,
 मिल गई यह गोप-सुता उन्हे ।

पाला है कर काट-छाँट उसको पोया उसी प्रेमने

शाखा छिन हुई हिली जड़ यदा, काटा, इकट्ठा किया,
आटा-सा करके रखा अनिलपै ऐसा पकाया उसे

भोक्ता तुष्ट हुआ, बुझी न तब भी दीप्ता क्षुधा प्रेमकी ।

इच्छा, अर्चन, काम, क्लेश, करुणा, गंभीरता, धीरता,

शुद्धानन्द, विचार और प्रभुता, कर्तव्यता, नम्रता,
स्नेहाचार, पवित्रता, सुखदता, संतुष्टता, योग्यता—

प्रेमीके सब प्रश्न-पत्र, इनमें होती परीक्षा सदा ।

“कन्याका मैं परिणय करूँ किन्तु है एक चिन्ता,
गोपाके हैं अपर प्रणयी जो उसे चाहते हैं,
योद्धा भारी समर-विजयी नागदत्ताख्य धन्वी,
वर्चस्वी है अमर सुत भी मत्त-मात्तंग-नामी ।

“सेनानी है सबल अति ही साहसी नन्दराजा,
वाँका धन्वी बलि-तनय भी चाहता व्याहना है,
कान्ताकारा कुमुद-कलिका-कोमला कन्यकाका
पावेगा सो कर-कमल जो हंस होगा द्विजोंमें ।

“सोचा मैंने शुभ मख रचूँ एक सप्ताह बीते,
राजा भेजें स-मुद अपने पुत्र सिद्धार्थको भी,
आवें सारे नृपति-सुत जो व्याहना चाहते हों,
वाणोंमें हों सफल, असिमें योग्यता-प्राप्त जो हों ।”

सारी बातें शक-नृपतिसे दूतने जा सुनाई,
राजाने भी वरण-मखमें पुत्र भेजा सुखी हो,
शोभाशाली विरचित हुई रंग-भू सौख्यदायी,
आया ज्यों ही समय जनता देखनेको पथारी ।

नाना योद्धा, समर-विजयी, विक्रमी, हेति-धारी,
आये राजा, प्रवळ बलमें, ख्यातिमें जो बड़े थे,
ऐसोंपै या विजय बलसे कौन-से साहसीने,
आओ, देखें, परिणय किया सुप्रबुद्धात्मजाका ।

शोभाशाली विरचित हुई रंग-भू भी सुभज्या,
लंबी-चाँड़ी परम सुखदा मेदिनी सज्जिता थी,
आभाशाली वह बन गई तुंग मंचादिकोंसे
जो थे ऐसे विशद कि उन्हें देखते देवता थे ।

आराकी-सी निशित जिनकी घोर थी तीक्ष्ण धारा,
 ऐसे ऐसे त्रिषम सरुके खड्गको झेलनेमें,
 आरोहीको निरख जवसे कूदता-फाँदता जो
 ऐसे भारी चपल गतिके अश्वको हाँकनेमें,
 बारी बारी अपर भटने जो कलाएँ दिखाई,
 वे थीं ऐसी निरख जिनको लोग थे मोद पाते,
 ज्यों ही आगे सुभटगणके वीर सिद्धार्थ आए,
 वारोंने भी प्रवचन किया योग्यता देखते ही—

“ योद्धाओंमें, अमर-सुत या नागदत्तादिकोंमें,
 चापोंमें, या निशित असिमें, या हयारूढ़तामें,
 एकाकी हैं सुभट-गणमें श्रेष्ठ सिद्धार्थ योद्धा,
 व्याहा जाना उचित इनका सुप्रवुद्धात्मजासे । ”

बोले गोपा-जनक सुखके अश्रु ला लोचनोंमें,
 “ मेरे प्यारे, उचित वर हैं आप ही कन्यकाके,
 सारे योद्धा विजित करके आपने रंग-भूमें
 फैलाई है सुयश-गरिमा शाक्य-वंशानुरूपा ।

“ बाजे बाजें, सुमुखिगण भी मंगलाचार गावें,
 आवे गोपा सुभग जयकी मालिका भेंटनेको,
 होवें सारी उपयम-प्रथा, व्याहकी योजनाएँ,
 मैंने पाया अतुल सुख जो पा सकेगा न कोई । ”

वंशस्थ

नृपालके शासनसे नितंबिनी,
 सुवार्णिनी उत्तम मत्तकाशिनी,
 तुरन्त वाला प्रमदा, कुलांगना,
 चलीं तरंगाकुल ज्यों तरंगिणी ।

विनोदिता यौवन-भार-गुर्विता,
 अनूप-अंगांग-अनंग-अंचिता,
 चली उगाती सित-कंज मार्गमें,
 वसन्त-लक्ष्मी सदृशा यशोधरा ।

चली यदा सस्मित हो मनोरमा,
 रदावली अग्रिम-वर्तिनी खुली,
 हुई सभा धौत प्रभात-अंशुसे,
 खिली सभीके मुखमें सरोजिनी ।

निशेशको, तारकको, पयोदको,
 स्व-वक्त्रकी, लोचनकी, कचौघकी,
 चली हराती रुचिसे यशोधरा
 सलज्ज-नम्रा सुपमावगाहिनी ।

विनीत कंठ-स्वरसे सरस्वती,
 स-लज्ज गौरी कल हाससे हुई,
 विलोचनोंसे विजिता समुद्रजा,
 पराजिता थी कटिसे पुलोमजा ।

मनोरमा मूर्तिमती उपा-समा,
 सुधांशु-आभा-सम कान्ति देहकी,
 ढली हुई श्रीकरसे विरंचिके,
 सुमध्यमा कांचन-अंग-यष्टि थी ।

लगा दिये सारंग अंग-अंगमें
 सिखा दिये शब्द 'कुहू'-निनादके,
 सुवासिता श्वास-समीरसे किया,
 उसे रचा था मधु-शिल्पकारने ।

ध्वजा-पताका-घट-तोरणदिसे

सजा हुआ मंडप था विवाहका,
भरे हुए थे नर-नारी धाममें
खड़े हुए थे गज-वाजि द्वारपै ।

तुरन्त बाजे बजने लगे वहाँ,

कृशानु-क्रीड़ा द्रुत छूटने लगी,
चढ़ी अटारी यव डालती हुई
अलापती कोकिल-कंठ कामिनी ।

कुमारियोंकी ध्वनि थी पिकी-समा

शिरस्थ थे मौर मनोज्ञ रूपके,
अजस्र होता सुमन-प्रदान था,
लखो सुवासान्तिकता विवाहकी ।

विराजमाना गृह-मध्य-भागमें,

वरासनस्था युग मूर्तियाँ लसीं,
विवाह मानों रति-शम्बरारिका
रचा गया हो फिरसे विरंचिसे ।

मनोज्ञ था आनन शाक्यवीरका,

प्रफुल्ल सर्वांश-प्रफुल्ल-कंज-सा,
ललाटमें रोचन-विन्दुकी प्रभा
पराग-शोभा करती मलीन थी ।

विराजता था कमनीय सीसपै

बना हुआ मंजु किरीट स्वर्णका,
मनोज्ञता-मंडित-मौर-मध्यमें
जड़े हुए हीरक-पद्मराग थे ।

कटाक्ष थे यद्यपि लक्ष्य पा चुके,
 तथापि भ्रू-चाप चढ़ा हुआ लसा,
 सुलोचनाके नयनारविन्दकी
 विचित्र थी भाव-प्रकाशिनी दशा ।

विवाहकी उत्तरदायिता बढ़ी
 चढ़ी कपोलोंपर और लालिमा,
 प्रफुल्ल-प्राया कलिका-समान थी,
 प्रसन्न मुद्रा वदनारविन्दकी ।

मृणाल-सा कोमल बाहु देखके
 विनिन्द्य जानी अपनी कठोरता,
 सुवर्णका कंकण भी इसीलिए,
 अजस्र होता बहु कम्पमान था ।

विलोकती थी प्रियको यशोधरा,
 निहारते थे दयिता कुमार भी,
 हुई व्यतीता कितनी शताब्दियाँ,
 कभी न भूला वह देखना मुझे ।

प्रसून-वर्षा कर नव्य युग्मपै
 अजस्र थीं गान-रता सुवासिनी,
 विवाह-आचार-विचारमें लगी
 स-वेद-मंत्र-च्यवि विप्र-मंडली ।

पुराण-वेदोक्त प्रकारसे तदा,
 हुआ समायोजन जो विवाहका,
 अभूत था संसृतिमें अभावि है,
 त्रिलोकमें भी उस-सा वही हुआ ।

—

2

1

3

समाप्त होते सब व्याहकी क्रिया,
 हुए महा हर्षित सुप्रबुद्ध भी,
 स-प्रेम सिद्धार्थ-समेत कन्यका
 तदा विदा की, कह यों कुमारसे—

शार्दूलविक्रीडित

“मेरा तो बस एक-मात्र धन है, कन्या शुभा सुन्दरी,
 माताकी यह मूर्तिमान करुणा, है स्नेह-संचारिणी,
 देता हूँ अब मैं वही उभयकी आशा अकेली तुम्हें,
 छाया ही इसपै सदैव रखना श्रीहस्तकी, हे सुधी !”

द्रुतविलंबित

रजनि एक घड़ी गत हो चुकी,
 उदित इन्दु हुआ मधु-मासका,
 कपिलवस्तु धराधिप-धाममें
 स-वनिता पहुँचे शक-नाथ भी ।

वर-वधू गुरु-चंदनके लिए
 जव पधार गये नृप-गेहमें,
 परम मोद-मयी महिषी हुई,
 मुदित भूपतिका मन हो गया ।

ससुरका पद-चंदन सासका
 कर बनी अति मुग्ध यशोधरा,
 फिर विदा निज-मंदिरको हुए
 वह महाछवि साथ कुमार ले ।

“ दृश्य-नामिदं यत्तु इवा मुने
 भिन्न गर्द ममको हृदयेनमी,
 तुम मुने सपत्नी इव भविष्ये हो
 भिन्न प्रकार इत्येक नकोमको ।

“ तुम मदी तुम हो मम वाक्प, या
 लम्ब मदी नम-स्वय-वधार हो,
 दृश्य मी कहना, नम हो लम्ब
 अनुत्त लोचनमे तुमको, भिये !

“ तुम भिये, मम अभ्रत चितके
 चरित तारकको धृति-सी हृदये,
 मम समस्त-विचार-तरंगिणी
 भैम गर्द नव मय-मनुष्यमें । ”

इस प्रकार परस्पर प्रीतिकर
 कथन दंपति थे करते जभी,
 छत्र प्रकुलित इन्दु वसन्तका,
 मदनने निज बाण चला दिया ।

शादृश्यविक्रीडित

आता यौवन मेघ-सा घिर जभी सीमंतिनी-अंगमें,
 होके पूरुष भी युवा जव विना कालुष्यके सोहता,
 देता स्वर्ग-प्रकाश-अंशु मधुके स्रपुष्पको फुलता,
 ब्रीडा और अर्धैयके समरमें क्या जीतना-हारना ।

युगल लोचन आयत कर्णलीं
 शरदके सरसीरुह-से खिले,
 सरस वंकिम दृष्टि कुमारकी
 हृदयमें चुभती नटसाल-सी ।

कनक-कुंडल-मंडित कर्ण हैं,
 कल कपोल कलानिधि-खंड-से,
 अधरका छवि-भार असह्य है
 चिबुक है इस हेतु सटी हुई ।

शशि-विनिन्दक हास-विलास है,
 शुक-समान मनोहर नासिका,
 तिलककी धुति भाल-विशालपै
 कर रही छवि सीमित विश्वकी ।

चमकती जिनमें अचिर-प्रभा
 छलकती छवि कुंडल-रत्नकी,
 सघन सावनकी करते घटा
 सरस कुंचित मेचक केश हैं ।

विमल, पूर्ण, प्रसन्न, महासुखी,
 सरस आनन शाक्य-कुमारका,
 निरखना यदि अब्ज अनूप हो
 नयन-युग्म चकोर बनाइए ।

अमर-भावमयी वचनावलीं
 श्रवणको मन उन्नत कीजिए,
 सरसता लखने रसराजकी
 भवनमें उनके अव आइए ।

शोभामयी खचित चित्रित भीतियोंपै
 हैं अंकिता सुरतिकी विविधा कथाएँ,
 राधा व्रजेन्द्र-सँग झूल रहीं, कहींपै
 सीता सँदेश सुनतीं हनुमानसे हैं ।

दुष्यन्तसे मिलन मंजु शकुन्तलाका
 था कृष्णसे हरण अंकित रुक्मिणीका;
 देखो अनेक जग-वन्दित प्रेमियोंकी
 हैं भीतिपै लिखित प्रेममयी कथाएँ ।

है सिंह-द्वारपर अंकित शोभनीया
 सिन्दूर-आलिखित मूर्ति गणेशजीकी,
 आराम है सुभग आँगनमें अनोखा
 है बीचमें शयन मर्मरकी शिलाके ।

आभामयी उपल-निर्मित चन्द्रशाला
 उत्कीर्ण-प्रस्तर-गवाक्ष-मयी बनी है,
 मध्यस्थ शीतल निकुंज हरा-भरा है,
 सारे कपाट हरिचन्दनके बने हैं ।

है कुण्डकी परम चित्र-विचित्र शोभा
 श्वेतोपलस्थ जल-निर्झर सोहते हैं,
 उत्फुल्ल पंक-रुह सुन्दर मोहते हैं,
 पाठीन स्वच्छ जलमें बहु रंगके हैं ।

जैसे कुरंग रत स्वैर-विहारमें हैं
 वैसे विहंग कल कूजनमें लगे हैं,
 देवेन्द्र-चाप-सम रंग-विरंगवाले
 उड़ियमान खग सुन्दर सोहते हैं ।

जैसे स-हास नभके विधु-तारकोंमें
 नक्षत्र पुच्छल सुखी बन जा रहा हो,
 जैसे प्रसून-गण-हास-विलास-कूला
 आक्रान्त-यौवनवती सरि जा रही हो ।

विश्राम-गेह-गत राजकुमारके भी
 वैसे अजस्र निशि-वासर जा रहे हैं,
 संध्या-प्रभात अपराह-पराह-बेला
 होती व्यतीत सत्र पूर्ण प्रमोदमें है ।

अन्तस्थ गुप्त-गृह हैं अति सौख्यशाली,
 जो शिल्पकी अमित अद्भुत शेष-सीमा,
 संयुक्त पुष्प-छविसे सुखदा जहाँपै
 संकीर्तनीय सुमनोहर दीर्घिका है ।

छाई, लखो, सदन-आँगनमें लताएँ
 जो भानुको बदलतीं सित-भानुमें हैं,
 निर्गम्यमाण जलके नल हैं अनूठे
 जो तुल्य-सौख्य-प्रद शैत्य-निदाघमें हैं ।

सोपान मंजु मणि-मर्मरका बना है,
 है पार्श्वमें खचित चित्र-विचित्रतासे;
 मानों सजीव समुपस्थित मार्गमें हों,
 प्रेमाग्नि-प्रज्वलनकी विविधा दशाएँ ।

हैं शुभ्र शीत तल उज्ज्वल प्रस्तरोंके
 जो हैं तुपार-चय-से ऋतु ग्रीष्ममें भी,
 है रंग-धाम-सुपमा कमनीय ऐसी
 जैसी कि देव-पतिके गृहमें न होगी

है नाम वर्ज्य दुख, क्लेश, जरा-ज्वराका,
 वार्ता यहाँ न अव-पीडित विश्वकी है
 जो रोग-दोष-भय-पीडनसे भरा है,
 जो है अतीव भयभाजन प्राणियोंको ।

धम्मिल्लमें खचित पुष्प मलीन होते,
 वेणो-निबन्ध वनता श्लथ दासियोंका,
 आती न रंग-गृहमें वह भूलसे भी
 है क्षम्य त्रस्त-अपराध न स्वप्नमें भी ।

शार्दूलविक्रीडित

भारी बन्धन भोगके पड़ गये दुर्लभ्य जो सर्वथा,
 बैठा सम्प्रति जागरूक वनके संभोगका पाहरू,
 नारीकी भुज-वल्लरी वन गई ज्यों वज्रकी शृंखला,
 कारागार-समान रंग-गृहके सिद्धार्थ बन्दी बने ।

द्रुतविलम्बित

न सुखमें-दुखमें कुछ भेद है
 ध्रुव रहे उनकी यदि शृंखला;
 न सुख-सा दुखदायक ज्ञानका
 यदि न मानव सौख्य-मदान्ध हो ।

सकम्प-शीर्षा, हरिता, मनोहरा,
 महा मनोज्ञा, अतिरम्यपल्लवा,
 सुगन्ध-युक्ता, वृहती सुखावहा,
 कदम्बकी थी अटवी सु-पुष्पिता ।

अजस्र धाराधर-अंक-वर्तिनी,
 महा प्रतप्ता, करकावगाहिनी,
 विलासिनी सम्यक अट्टहासिनी
 प्रकाशती थी अति-मंजु दामिनी ।

अखंड धारा वरसी पयोदसे
 निदाघ-तप्ता महि तृप्त हो गई,
 परन्तु बैठा तरुपै अतृप्त ही
 पुकारता चातक था कि 'पी कहाँ ?'

खिली हुई थी वन-मध्य कामिनी,
 सु-पुष्पिता थी अति मंजु केतकी,
 कली खुली थी रजनी-प्रकाशकी,
 प्रफुल्ल था कैरवका वितान भी ।

निशीथमें, वासरमें अजस्र ही
 प्रमत्त झिल्ली झनकार-छीन थे,
 तड़ागके या सरिके समीपमें
 सु-नार था निःस्वन भेक-यूथका ।

कुमार अन्यन्त विमुग्ध-चित्त हो
 विगज्जते थे अति उच्च गेहँपे,
 यशोधरा-मंग महान मोदमें
 विन्योक्तते थे ऋतुकी मनोज्ञता ।

“ प्रमत्त होते वनमें गजेन्द्र हैं,
 अशान्त होते गृहमें गयेन्द्र हैं,
 अभीत हैं, निश्चल हैं, प्रसन्न हैं,
 मृगेन्द्र, राजेन्द्र, सुरेन्द्र, हे प्रिये !

“ प्रमत्त-वर्हीगण-नृत्य देखके
 कदम्ब-शाखी स-कदम्ब हो गये,
 वनी स-कामा कलविंग-भंडली
 वरेण्य-सम्पन्न वसुन्धरा हुई ।

“ प्रशान्त है रेणु, समीर शीत है,
 निदाघके दोष नितान्त शान्त हैं,
 हुई परिश्रान्त नृपाल-वाहिनी
 चले प्रवासी अपने निकेतको ।

“ न मानिनी जो अब मान त्यागती
 मनोजकी है अपराधिनी वहीं,
 पयोद-माला, मिष विज्जुके, यही
 प्रसारती काम-नृपाल-घोषणा ।

“ निसर्ग-शोभा लख यौवनोपमा
 दिशा-वधू प्रौढ़-पयोधरा हुई,
 हुई स-पुष्पा मृदु-गंध केतकी
 विलोक अस्पृश्यतमा तरंगिणी ।

“ गिरा करे मूसलधार नीर भी
 हुआ करे गर्जन वारिवाहका,
 सभी भयोंकी प्रतिघातिनी प्रिया
 महौषधी-सी यदि हो समीपमें ।

जघनपै रेंखें सीस यशोधरा
 व्यजन मन्द तदा करने लगी,
 पर न आँख लगी क्षण एक भी,
 कि पलमें प्रभु चौंक पड़े तभी ।

जिस प्रकार प्रसुप्त मनुष्य, जो
 निरखता निजको मरु-भूमिमें,
 भटकता फिरता अति व्यग्र है
 फिर नहीं सकता निज गेहको ।

उस महा मरुके अति तापसे
 परम व्याकुल हो वह व्यग्र हो,
 जब उपाय चले न, तुरन्त ही
 जग पड़े अकुलाकर स्वप्नमें ।

उस प्रकार जगे भगवान भी
 उझकते झकते बकते हुए,
 “दुरित-भीत मनुष्य अभीत हों,
 प्रकट भैं भयका भय हो गया ।”

सुगत-आनन भी आति तेजसे
 परम दिव्य प्रकाशित हो गया,
 नयनमें उमड़ी घुमड़ी घटा
 वरस वारि पड़ा उर-भूमिपै ।

यह विलोक स-शंक यशोधरा
 परम-व्याकुल-चित्त हुई तदा,
 द्रुत लगी प्रियसे वह पूछने,
 “अहह ! नाथ, हुआ दुख कौन-सा ?”

‘ कि प्राणी आते हैं निकल करके शून्य-भवसे,
 धुँएँके धामोंको विरच चढ़ते हैं गगनमें,
 युवा हो, भोगी हो, जरठ, जड़, रोगी, मृतक हो
 सदा यों ही रोते जवतक न निर्वाण-गत हों ।

‘ इसी वीणाके ज्यों पटलपर हैं तार चढ़ते,
 पुनः जैसे-तैसे मृदुल वजते, मूक बनते,
 दशा स्रस्ता ऐसी सकल जनकी देख पड़ती,
 महाक्लेशापन्ना, क्षणिक-सुखदा, वीत-विभवा ।

‘ सदा प्राणोंके भी सकल जनके प्राण बनके,
 फिरी, घूमी, धाई निखिल जगमें रात-दिन मैं,
 विलोका है प्राणी हृदय-तलमें पैठकर भी
 भरा संतापोंका उदधि उरमें हाय ! उनके ।

‘ तरंगों आशाकी सतत उठती हैं बलवतीं,
 शिलाएँ चिन्ताकी निज सिर उठाये अचल हैं,
 भरा है रागोंके सलिल-चरसे सिन्धु मनका,
 जहाँ संतापोंके निधन-प्रद आवर्त फिरते ।

‘ इन्हीं तापोंसे हो व्यथित बहु उच्छ्वास भरके,
 क्षपाकी तन्द्रामें क्षणभर परिश्रान्त बनके,
 विलोका तारे जो परम करुणा-भाव-भय हो
 सुनाते थे रोके अयुत मुखसे ताप जगका ।

‘ वहाँ तारे कैसे पहुँच सकते हैं निकट भी,
 जहाँ दोषाचारी रजनिकर भी राहु बनता,
 जहाँ जाते जाते तपन बनता केतु तमका,
 जहाँ ‘सो ही सो’ है, अविगत जहाँ ज्योति सत्रकी ।

‘ कि प्राणी आते हैं निकल करके शून्य-भवसे,
 धुँएँके धामोंको विरच चढ़ते हैं गगनमें,
 युवा हो, भोगी हो, जरठ, जड़, रोगी, मृतक हो
 सदा यों ही रोते जबतक न निर्वाण-गत हों ।

‘ इसी वीणाके ज्यों पटलपर हैं तार चढ़ते,
 पुनः जैसे-तैसे मृदुल बजते, मूक बनते,
 दशा सस्ता ऐसी सकल जनकी देख पड़ती,
 महाकेशापन्ना, क्षणिक-सुखदा, वीत-विभवा ।

‘ सदा प्राणोंके भी सकल जनके प्राण बनके,
 फिरी, घूमी, भाई निमिल जगमें रात-दिन मैं,
 निजोका है प्राणी हृदय-तलमें पैठकर भी
 भरा संतापोंका उदधि उरमें हाथ ! उनके ।

‘ लगेमें आशाकी सतत उठती है बलवती,
 क्षिप्तों, निवृत्तोंकी निज सिर उठाये अचल है,
 जग है रागोंके सन्निवृत्त-चरणे विन्धु मनका,
 जहाँ संतापोंके निधन-प्रद आवने फिरने ।

‘ जहाँ तापोंने ही व्यथित बहु उच्छ्वास भगके,
 क्षणिकी लज्जा लक्षणपर परिश्रान्त बनके,
 निवृत्तोंका तार जो परम कल्याण-भाव-मय हो
 दुःखान्त के मन्द श्रवण मुग्धसे ताप जगका ।

‘ जहाँ तार तब पड़ूँच मन्द है निकट भी,
 जहाँ क्षण-वरी सन्निवृत्त भी मद्ध बनता,
 जहाँ क्षण-वरी तब तब बनता है मद्ध बनका,
 जहाँ - क्षण-वरी तब तब है, श्रवणान्त जहाँ श्रवण-मयकी ।

‘ कि प्राणी आते हैं निकल करके शून्य-भवसे,
 धुएँके धामोंको विरच चढ़ते हैं गगनमें,
 युवा हो, भोगी हो, जरठ, जड़, रोगी, मृतक हो
 सदा यों ही रोते जबतक न निर्वाण-गत हों ।

‘ इसी वीणाके ज्यों पटलपर हैं तार चढ़ते,
 पुनः जैसे-तैसे मृदुल बजते, मूक बनते,
 दशा स्रस्ता ऐसी सकल जनकी देख पड़ती,
 महाक्लेशापन्ना, क्षणिक-सुखदा, वीत-विभवा ।

‘ सदा प्राणोंके भी सकल जनके प्राण बनके,
 फिरी, घूमी, धाई निखिल जगमें रात-दिन में,
 विलोका है प्राणी हृदय-तलमें पैठकर भी
 भरा संतापोंका उदधि उरमें हाय ! उनके ।

‘ तरंगें आशाकी सतत उठती हैं बलवतीं,
 शिलाएँ चिन्ताकी निज सिर उठाये अचल हैं,
 भरा है रागोंके सलिल-चरसे सिन्धु मनका,
 जहाँ संतापोंके निधन-प्रद आवर्त फिरते ।

‘ इन्हीं तापोंसे हो व्यथित बहु उच्छ्वास भरके,
 क्षपाकी तन्द्रामें क्षणभर परिश्रान्त बनके,
 विलोका तारे जो परम करुणा-भाव-मय हो
 सुनाते थे रोके अयुत मुखसे ताप जगका ।

‘ वहाँ तारे कैसे पहुँच सकते हैं निकट भी,
 जहाँ दोषाचारी रजनिकर भी राहु बनता,
 जहाँ जाते जाते तपन बनता केतु तमका,
 जहाँ ‘सो ही सो’ है, अविगत जहाँ ज्योति सबकी ।

चतुर्दिशा पूषणकी मरीचियाँ,
 स-नीर थीं शैत्य-युता प्रकाशतीं,
 महीरुहोंके सलिलाक्त पत्रपै
 दिनेश-आभा चमकी प्रफुल्ल हो ।

शनैः शनैः मन्द पड़ीं मरीचियाँ,
 पिशंगता भी उनमें समा चली,
 कभी रहीं मंदिर-मूल-वर्तिनी
 अभी हुई वृक्ष-शिखा-प्रकाशिनी ।

समीर डोला, खग नीडको चले,
 उल्टक जागे, विहँसी कुमुद्वती,
 हुई तमी, तारक दीप्त हो उठे,
 प्रदीप आया, गृह शुभ्र हो गया ।

दिनेशकी मन्द मरीचियाँ सभी
 हुई परिश्रान्त नभावलम्बिनी,
 गतावलम्बा बन अद्रिपै लसी
 विलंबिता पंकज-कोष-रागिणी ।

अहो ! करेगा कल केलि देर लैं
 यहाँ कलानाथ प्रकाम भावसे,
 महातुरा कृष्ण-तमिस्र भेंटके
 हुई स-रागा रजनी रमा-समा ।

निलीन होते खग स्वीय नीडमें,
 निमीलिताक्षी वनती सरोजिनी,
 विकासको प्राप्त हुई कुमुद्वती,
 प्रतीत होती रजनी समागता ।

बिता रहे थे वह सान्ध्य एकदा,
 सुना रही थी रजनीमुखी कथा,
 प्रमोदकी, या उड़ते तुरंगकी
 प्रभूत गाथा जिसमें विदेशकी ।

कहा, कहानी सुन यों, कुमारने
 “ सुनी प्रवीणे, यह प्रेमकी कथा,
 पुनश्च मेरे मनमें समा गया
 समीर-संगीत उसी प्रकारका ।

“ अनन्त-सीमा यह क्या वसुन्धरा,
 न पा सका अन्त स-पक्ष वाजि भी ?
 अवश्य होंगे वह देश भी जहाँ
 प्रकाश होता उदयास्त-भानुका ।

“ यशोधरा-से, मुझसे महा सुखी
 असंख्य होंगे वसते शुची जहाँ,
 परन्तु होंगे कुछ जीव भी वहाँ
 हताश जो, क्लेशित जो, विपन्न जो ।

“ उषानुचारी लख वासवेशको
 विचारता देख सुवर्ण व्योम में,
 ‘ विलोकते जो पहली मरीचियाँ
 मनुष्य कैसे उदयाचलस्थ हैं ? ’

“ दिनेश होता, सखि, अस्त है जहाँ
 विलोकता हूँ वह पश्चिमा दिशा,
 तुरन्त आता यह भाव चित्तमें,
 ‘ मनुष्य कैसे चरमाचलस्थ हैं ? ’

“ अतः करे भूपतिसे प्रभातमें
 विनति हो दूत मदीय प्रार्थना,
 हुई मुझे संप्रति तीव्र लालसा,
 लखूँ जहाँ लौं शक-राज्य-भूमि है ।

शिखरिणी

“ कहाँ लौं फैला है धरणितल मेरे जनकका,
 कहाँ खेती होती, गहन उगता विस्तृत कहाँ,
 कहाँ लौं हैं नाले, सर, सरित, प्रत्यंत गिरि भी,
 लखूँ मैं भी सारा जगत यह आगार तजके । ”

द्रुतविलम्बित

इस प्रकार स्वतन्त्र विचारमें
 सुगत अन्यमनस्क हुए तदा,
 पर प्रशान्तिमयी लख यामिनी
 वह प्रशान्त हुए क्षण एकमें ।
 अब नितान्त प्रशान्त निशीथ है,
 रजनि-निःस्वन-गर्भ कठोर है,
 प्रकृति-हृद्गति है अब वन्द-सी,
 अचल-सी जग-जीवन-नाडिका ।

न अवनी-रव, नीरव व्योम है,
 चिटप-वृन्द स-तन्द्रा जुके हुए,
 अब, स-तारक अंबरको लखो,
 गुण विहाय हुआ अमहाय-सा ।

विहग-म्वन्न निकृजित मन्द है,
 सुमन म्बेदित है दृढ़ नीदमें,
 प्रणय-जीवनको कण ओमकें
 निधनको नभका गुण भेटना ।

शार्दूलविक्रीडित

हे निद्रे, जन-शान्ति-ग्रन्थि, दयिते, तू ही मनोमोहिनी,
 प्रज्ञाकी उपहार-भूमि साखि तू, संताप-शान्ति-प्रदा,
 दीनोंका धन, तू स्वतन्त्र सुख है बन्दीजनोंके लिए,
 प्याला विस्मृतिका पिला सुगतको, संसार सोता रहे ।

“ नमस्त्वाम्य नमो पुर-जीविका
जगमगे सब रान्दर सा नमो,
नमस्ते समुदायक दृश हों,
सकुन मंगल ही सब ओर हों ।

“ जरठ पंगु कुशंग मन-पिके
कुरुचि-गूर्ण कुदृश रहे नदी, ”
नृपतिका यह आसन माममें
रखित फैल गया इस भाँतिसे—

“ कुश, जराभूत, अंध, अन्कर्ण भी
न निकलें मृत्को तज मार्गमें,
सकल वासर आज न बाज हो
निधन, रोगन या शय-दाहकी ।’

नृप-निर्देश फिरा जब माममें
लग गय नर-नारि विधानमें,
सदन स्वच्छ सजाकर, द्वारपे
सलिल-सिंचन भी करने लगे ।

पथ-तटस्थित-वृक्ष-शिग्याप्रपे
कलित केतन भी फहरा उठे,
सुमुखियाँ मुदिता सजने लगीं
परम चित्र-विचित्रित भीतियाँ ।

कुल-वधू दधि-रोचन-पुष्प ले
सदन-द्वार सभी सजने लगीं,
सकल साज-समाज रचे गये,
पुर प्रभूत सुदर्शन हो गया ।

‘सुख-सद्बि-विधापक राज्य है
 यदि मिले वसुधा सरसा प्रजा,
 स्मरित और बढ़ो तुम, सारथे,
 सुभगता लख लें सब ग्रामकी ।’

नगरमें निकलें अनि मोदसे
 गति गभीर हुई हय-यानकी,
 मनुज संश्रित थे पथ-पार्श्वमें
 सुगतको लगते अति प्रेमसे ।

का प्रणाम मदान प्रसन्न थे,
 सुगुण थे कहते युवराजके;
 कविदम्प-मर्दप-निदेशका
 सुदृढ़ पावन थी कम्पी प्रजा ।

मनुज एक पगबु उमी बढ़ी
 उदयमें निकला अनि दुःखमें,
 लक्ष्मण-शकर आकर सामने
 उभर करी देव लड़ा हुआ ।

सकल अंग प्रसन्न-ज जीर्ण थे,
 कल-कल मसलन पिडीर्ण थे,
 मिलि मिलि लक्ष्मण-शकराणि थे,
 लक्ष्मण-शकराणि लक्ष्मण-शकराणि थे ।

लक्ष्मण-शकराणि लक्ष्मण-शकराणि
 लक्ष्मण-शकराणि लक्ष्मण-शकराणि
 लक्ष्मण-शकराणि लक्ष्मण-शकराणि
 लक्ष्मण-शकराणि लक्ष्मण-शकराणि ।

समय फैली अति शुभ भांगिका
 मिली मुदा कैरवि-तारकावली,
 बना नभोमंडल है तडाग-सा,
 निशेश है शोभित राजवंश-सा ।

निशीथिनीके इस दीप्त दीपरो
 प्रकाशिता शुभ प्रभा-गधू हुई,
 खिली हुआ यौवन मंजु कान्तिका
 अनूप है मोद-प्रदान-प्रक्रिया ।

हुई समुद्रूत यदा दिगन्तसे
 मद्दान शोभामयि चारुचंद्रिका,
 चढ़ी हुई थी अपने शिखाप्रपे
 गभीरता अच्युत अन्तरिक्षकी ।

विभासिता वर्तुल तारकावली
 उगी सभी ओर सुधा-निधानके
 महीरुहोंपे कुछ पीतिमा लसी
 महीधरोमें सितता समा गई ।

सभी स्थलोंमें, सब नीर-पुंजमें,
 सभी वनोंमें सब गेह-कुंजमें,
 तथा हुआ प्लावन चन्द्र-बिम्बका
 गिरी सुधा-धार यथा गिरीशपै ।

अमोघ है ओषधि ओषधीशकी,
 प्रभाव न्यारा क्षणदाधिराजका,
 तडागमें हैं लहरें विभासकी,
 हुआ अकूपार तरंग-युक्त है ।

प्रकाश-आपूरित चक्र-नाभि थी,
 मरीचि-माला-मयि नेमिकी प्रभा,
 समस्त आरोंपर थे प्रकाशते
 अनेकशः मंत्र हिरण्य-गर्भ के ।

पुनः लखा सुन्दर स्वप्न भूपने,
 कि मध्यमें पर्वत और ग्रामके
 खड़े हुए शाक्य-कुलाधिदेवकी
 . . महा प्रसन्ना मुखकी प्रभा लसी ।

स-नाल-कंजोपम हस्तसे मुदा
 कुमार डंकेपर चोव दे रहे,
 प्रचंड निर्घोष पयोद-नाद-सा
 हुआ नभोमंडल-मध्य व्याप्त था ।

स-तर्क हो भूप विलोकने लगे,
 मनोज्ञ था मंदिर एक सामने,
 विशाल उत्तुंग गिरीन्द्र-शृंग-सा
 चला गया उन्नत अन्तरिक्ष लौं ।

कुमार मुक्ता, मणि, हीर, हेम भी,
 लुटा रहे थे आति मुक्त-हस्त हो,
 कि व्योमसे भूपर अग्नि-देव ही
 स्वकीय लीला-कण थे बिखेरते ।

असंख्य नारी-नर रंक-यूथ-से
 प्रसन्न थे रत्न-समूह लटते,
 कृतार्थ हो वे कर जोड़ ईशसे
 मना रहे थे जय अर्क-बन्धुकी ।

ललाट, ग्रीवा, कर, जानु, पादकी
 नसें समाकृष्ट अतीव व्यक्त थीं,
 महायती इन्द्रिय-ग्राम-वाजिकी
 प्रकृष्ट बल्गा-रय हों खिंची यथा ।

दवा हुआ था मृग-चर्म कक्षमें,
 सधा पयोभाजन वाम हस्तमें,
 अलक्त माला हिल वक्षपै उठी
 उठी जभी दक्षिण बाँह साधुकी ।

नृपालसे वे ऋषि प्रेम्ण-भावसे
 भुजा उठाके जत्र बोलने लगे,
 हुए सभा-आँगनमें प्रतीत वे
 शरीरधारी भवितव्य-से सुधी ।

“ महा कृती भूप प्रशंसनीय तू,
 त्वदीय प्रासाद पवित्र भूमि है,
 प्रभा जहाँकी भुवनातिरंजिनी
 विनाश देगी हृदयान्धकार भी ।

“ लखे धरित्रीपति, सप्त स्वप्न जो
 वही महा मंगल सप्त लोकके,
 प्रतीत होता वह काल आ चुका
 दिनेश होगा जत्र व्यक्त धर्मका ।

“ लखा महींमें नत केतु आपने
 ब्रज गिरी है वह पाप-मार्गकी,
 प्रसिद्ध थे जो व्यभिचार धर्मके
 कभी न होंगे श्रुत वे भविष्यमें ।

“समुच्च देखा गृह तेज-पूर्ण जो
 वही महामंजुल बुद्ध-शास्त्र है,
 निपात था जो बहु-रत्न-राशिका
 प्रदान था सो निज धर्म-मंत्रका ।

“पलायमाना जन-मंडली न थी
 अनीक थी सो क्षत पाप-कर्मकी,
 प्रकंपिता कानन-वासिनी बनी,
 विलोक आदर्श समन्तभद्रका ।

“सुखी बनो हे नृपते, विलोकके
 प्रबुद्ध, सर्वज्ञ, समन्तभद्रको,
 समस्त-भू-मंडल-राज्यसे कहीं
 बढ़ा-चढ़ा शाक्य-मुनीन्द्र-राज्य है ।

“सुवर्णके अंबरसे कुमारको
 कपायके वस्त्र अर्थात् इष्ट हैं,
 दृष्टा न होगा उन-सा न है कहीं
 मय-राज्य-श्री-मंपति वार दीजिए ।

“इहम्य पेमा इत मात मयनका
 न अन्यथा हे नृप, मय्य मानिए,
 अवश्य ही धामर मात धीनते
 न ही रहेंगे, न विचार कीजिए ।”

मुनीन्द्रने जो कह भिन्न मयनका
 प्रमाण ज्यों ही निज धामको किता,
 नृपत्यने न न दृढ-वृद्ध भी
 सुगन्त भेज उनके समीपमें ।

“ होता स्पष्ट प्रभात-स्वप्न-सम है दीर्घायुका मार्ग भी,
 सारी संसृतिका रहस्य बनता सुस्पष्ट वृद्धत्वमें,
 कोई भी मरता नहीं जगतमें प्राणी जरा-रोगसे
 चिन्ता, क्रोध, प्रयत्न, भीति, करुणा, पंचत्वके हेतु हैं ।

“ आती संतत आयु संग नरकी गंभीरता, धीरता,
 दोनों सद्गुण वीरता-परक हैं, कार्पण्यसे हीन हैं,
 होती यौवनमें अवश्य प्रवला संभ्रान्ति-संभावना,
 प्यारे, सम्मति-दानमें जरठ ही भू-लोक-मंदार हैं ।

“ प्राणी जीवनकी पवित्र गति है, संतापकी शान्ति है,
 सारा दृश्य महान मोदमय है, संबोध-सम्मान है,
 होता है अमृतत्व-साधन वहीं वृद्धत्वके देशमें,
 संख्या ही करती प्रभात जगमें, चूडान्त सिद्धान्त है ।

मालिनी

“ सकल दिवस चिन्ता चित्तमें हो प्रजाकी
 सकल रजनि बीते ध्यानमें धर्मके ही,
 सकल-जगत-कर्ता-अर्चना प्रातमें हो,
 सकल-प्रकृति-आशीः साँझ लौं भूप लेवे ।”

नृपतिके ढिग जाकर प्रातमें
 विनय की इस भाँति कुमारने—
 “जनक, है मुझको फिर लालसा,
 पुर लखूँ, भवदीय निदेश हो ।

“नगरमें उस वासर था फिरा
 प्रभु-निदेश, ‘रहें सब मोदमें,’
 सकल हाट तथा सब बाटमें
 परम आनंद-दायक साज थे ।

“पर मुझे यह ज्ञात हुआ वहीं,
 प्रकृत मानव-जीवन था न सो,
 प्रथम बार समस्त मनुष्य भी
 सहित-मोद-प्रमोद-विनोद थे ।

“यदि मुझे भवदीय प्रसादसे
 प्रकृत जीवन देख मिले कहीं,
 समझ लूँ निजको अति धन्य मैं
 अनुभवी बनना नृप-धर्म है ।

“नृपति-धर्म सुना, प्रभु, आपसे,
 परम दुष्कर कर्म कठोर है,
 प्रकृतिकी स्थितिको पहचानना,
 बहु विशिष्ट विधेय विचार है ।

“निरख लूँ जन-शासितकी दशा
 रजनि-वासर जो श्रम-लीन हैं;
 समझ लूँ उनकी करुणा-कथा
 नृपति जो न महान अधीन हैं ।

अहि नचाकर जीवक भी कहीं
 कर रहा पथमें बहु खेल था,
 सुन बराट-विमंडित तुंविका
 चिर रहे बहु बालक-वृन्द थे ।

सुमुखियाँ विधुरा समवेत हो
 चिनय थीं करतीं शिवसे कहीं—
 ‘वरद, हे प्रभु, हे शिव, शम्भु हे,
 दयित शीघ्र फिरें पर-देशसे ।’

शार्दूलविक्रीडित

देखा दृश्य महान मोद-युत हो, सिद्धार्थ आगे बढ़े,
 पीछे छन्दक था, कुमार-मनकी जो वृत्ति था देखता,
 दोनों ‘साधु’ बढ़े अमन्द गतिसे ज्यों ही कढ़े ग्रामसे
 आया एक तड़ाग जो पवनसे कल्लोल-आक्रान्त था ।

द्रुतविलंबित

नगरके निकले जब प्रान्तसे
 सुन पड़ा स्वर आर्ति मनुष्यका,
 “अव गिरा, अव, हाय ! मरा अरे !
 अहह ! सहा न जीवन-भार है ।”

जरठ आ निकला उस मार्गमें
 व्यथित क्लेशित पीडित दुःखसे,
 पलित पांशुल था तन धूलिमें,
 विगलिता क्षत-विक्षत देह थी ।

“ निविध तत्त्व मिलें क्रमसे यदा
समझते सब जीवन हैं उसे,
जब कभी उनमें व्यतिरेक हो
मरण-संज्ञक है घटना वही ।

“ रुधिर तप्त कभी बल्युक्त था,
अब वही बल-हीन अनुष्ण है,
हृदय था तब हेतु उमंगका,
अब वही भय-कारण-मात्र है ।

“ अकम्बु देह दुई, नत-मीन है,
सब नगे इगर्बी अब सख्त हैं;
विमान दैहिक गुन्दरना दुई,
अहह ! जीवन-गार कहीं गया ?

“ जरुह-अंग अनीन अगल हैं,
नींग रहे दुग हैं दुग-कांशमें,
नर विपन्न, जरा-अवयव हैं,
न अब नी न जनें अमु देहको ।

“ अकम्बु देह अनीन-अगल हैं,
नींग रहे दुग हैं दुग-कांशमें,
नर विपन्न, जरा-अवयव हैं,
न अब नी न जनें अमु देहको ।

“ अकम्बु देह अनीन-अगल हैं,
नींग रहे दुग हैं दुग-कांशमें,
नर विपन्न, जरा-अवयव हैं,
न अब नी न जनें अमु देहको ।

“ विविध तत्त्व मिलें क्रमसे यदा
 समझते सब जीवन हैं उसे,
 जब कभी उनमें व्यतिरेक हो
 मरण-संज्ञक है घटना वही ।

“ रुधिर तप्त कभी बल्युक्त था,
 अब वही बल-हीन अनुष्ण है,
 हृदय था तब हेतु उमंगका,
 अब वही भय-कारण-मात्र है ।

“ अकृजु देह हुई, नत-ग्रीव है,
 सब नसें इसकी अब स्रस्त हैं;
 विगत दैहिक सुन्दरता हुई,
 अहह ! जीवन-सार कहाँ गया ?

“ जरट-अंग अतीव अराल हैं,
 धँस रहे दग हैं दग-कोशमें,
 नर विपन्न, जरा-अवसन्न है,
 न अब भी तजते असु देहको ।

“ जरटके इस अस्थि-समूहको,
 विगम काष्ठ बनाकर व्याधियाँ
 निकल दीव्र कहीं उड़ जायँगी,
 प्रभु मुद्गर रहे गद छूत है । ”

जवनमे मिर वृद्ध मनुष्यका
 विच्छग किन्तु किया न कुमारने,
 दग उठाकर छन्दकसे कहा

“ सच कहो, तुम निश्छट, सारथी ।

“ जिस प्रकार अनेक कुलंगी
 सान काननमें हरि दृष्टता,
 जिस प्रकार जहाज पयोधरी
 अशनि है गिरता गिरि-शृंगी ।

“ निधन ठीक इसी गिरी-से, प्रभो,
 मनुजी करता निज नात है,
 मनुज क्या, जगहें सब जन्तु भी
 अवल लक्ष्य बने इस मृत्युके ।

“ सब चढ़ी, सबको, सब भौंतिसे
 भय लगा रहता भव-व्याधिका,
 मर रहस्य-निर्दर्शक भी गये
 निधनका, पर, भेद न पा सके ।

“ नर प्रसुप्त हुआ जब रात्रिमें
 बन गया वह तो मृत-तुल्य ही,
 न जनमें यह साहस, जो कहे,
 ‘ कल प्रभात हुए जग जायगा । ’

“ सकल रोग तथा सब केशकी
 अशुभ उत्तरदान-म्वरूपिणी
 विविध व्याधि, अशक्ति, विपण्णता,
 विरस देह, विपत्तिमयी जरा—

“ जरठता रहती यदि अंतिमा,
 दुख सभी यह भी अवमान्य थे,
 पर, प्रभो, इसकी अनुगामिनी
 अखिल-भूत-भयंकर मृत्यु है ।

सुहृद बन्धु बने अति खिन्न थे,
 स्वजन भी बहु-रोदन-युक्त थे,
 विलपती वनिता सँगमें चली,
 हरित बाँस बाँधे मृत-यानमें ।

धवल बख ढकी तनु-यष्टिका,
 मृतक था स्थित चार मनुष्यपै,
 नयन प्रस्तर-से, मुख भूत-सा,
 उदर पुष्कर था, अँग दारु थे ।

विरच एक चिता सरि-कूलपै,
 मृतकको उसपै रख शोकमें,
 कुछ क्रिया करके फिर शीघ्र ही
 जन कलेवर-दाहनमें लगे ।

“ किस महान प्रशान्त प्रसुप्तिके
 विवश हो जनका तन सो गया ?
 विपति-संपति आतप-शीत भी
 अब जगा सकते उसको नहीं ।

“ अब तृषा न, क्षुधा न विपत्तिकी,
 न दुखकी, सुखकी न प्रमोदकी,
 अनलकी जलकी न समीरकी
 कुछ रही उसको अनुभूति है ।

“ अनल आनन-चुम्बन-लीन है,
 पर न ध्यान उसे इस तापका;
 अगर-कुंकुमकी, घनसारकी,
 अब न गंध वसा-पलकी उसे ।

“ वच रहीं कुछ हैं सित अस्थियाँ,
 न नरसे वह भी अब दृश्य हैं,
 पतित जीवनके तलमें हुई
 फिर रसा-सरसा वन जायँगी ।

“ कुछ दिनों पहले यह वृद्ध भी
 युवक था, सुख-सिन्धु-निमग्न था,
 प्रवल वायु चला इस बीचमें
 उखड़ पादप भूपर आ गिरा ।

“ गिर पड़ा तरु-सा यह जीव, या
 सलिलमें पड़ डूब मरा कहीं,
 डस गया इसको अथवा फणी
 बन गई क्षत जीवनकी तरी ।

“ कि हत आयुधसे अरिने किया,
 कि तनमें अति शीत समा गया,
 फट पड़ी अथवा छत दीनपै;
 निधन केवल एक निमित्त है ।

“ धनिक, निर्धन, ब्राह्मण, शूद्र, या
 नृपति, भिक्षु, सुखी अथवा दुखी,
 मर गये, मरने, मर जायँगे,
 मरण तो मरका अनिवार्य है ।

“ निगम-आगम हैं कहते, प्रभो,
 ग्रहण हैं करते फिर जन्म वे,
 पर न ज्ञान दृष्टा यह आज लौं,
 किस प्रकार, कहाँ, किस कालमें ?

1. The first part of the paper discusses the importance of understanding the underlying mechanisms of the observed phenomena. This is crucial for developing effective interventions and policies.

2. The second part of the paper reviews the existing literature on this topic. It highlights the strengths and limitations of previous studies and identifies areas for further research.

3. The third part of the paper presents the results of the current study. It includes a detailed description of the methodology used, the data collected, and the statistical analysis performed.

4. The fourth part of the paper discusses the implications of the findings. It explores the potential applications of the results in practice and the broader implications for the field.

5. The fifth part of the paper concludes the paper and provides a summary of the key findings. It also offers suggestions for future research and practical applications.

द्रुतविलम्बित

अभिनिवेदन राजकुमारका

नृपतिने जब छन्दकसे सुना,

बढ़ चली सुतकी हित-चिन्तना

वह विपश्चित चिन्तित हो उठे ।

द्रुत निदेश दिया कि कुमारके

भवनके सब फाटक बन्द हों,

बस, उरी क्षणसे सबका वहाँ

गमन भीतर-बाहरका रुका ।

वन गया वह रंग-निकेत भी

दुःखद बन्दि-निकेतन-तुल्य ही;

अयगकी हड़ कील-रामृद-से

प्रकट मंभ हुए उस गेहके ।

विबुध थे मिथन जो दश द्वारों

वह गममन अजस्र प्रबुद्ध थे,

मुदित होकर स्वस्थ निशीथमें

गुमान गुम, न किन्तु अनुबुद्ध थे ।

यदि निर्गन्ध गममन मनुष्यमें

सजसना मयना हम नीलिनकी,

नव अयय पुष्पन पाप भी

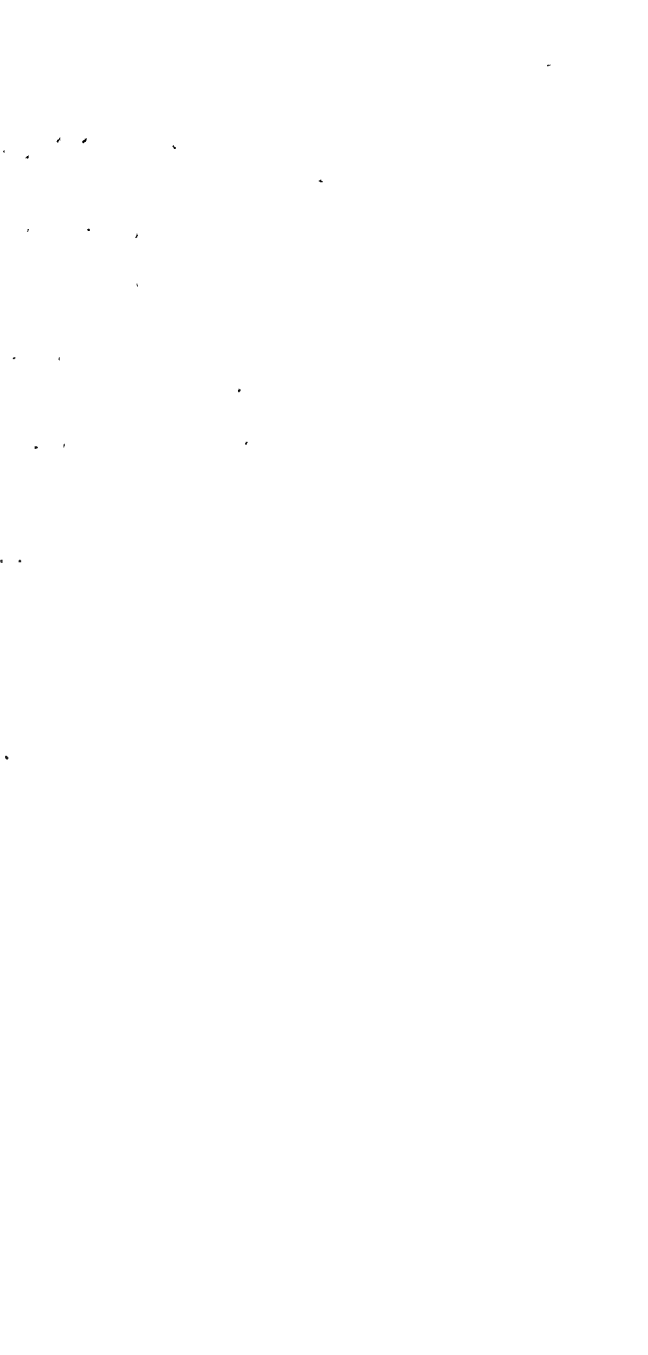
अनुन पुष्पकरीर मियाने ।

नव नव नव अन्ति निवास दे,

मुम्बुल्लिखी नव नव अयय दे,

नव नव नव प्रसिद्धादे,

नव नव नव निवास हो गया ।



मन्दाक्रान्ता

तो भी कोई सुगत बनते उत्स आलोकके हैं,
 स्वेच्छाचारी विचर जगमें ध्वान्त सर्वत्र खोते,
 तारा, तारा-अधिप, सविता, एककालीन ही हैं,
 तेजस्वी तो सकल युगमें एक-से भासते हैं ।

फूला अशोक-तरु है अति मोददायी,
 गुंजार-युक्त भरते अलि भाँवरें हैं,
 देखो, तरुस्थ खग-संहतिको जगाते
 भूपै मध्रुक गिरते परिपक्व होके ।

नीलाभ व्योम अब निर्मल हो गया है
 हैं रौप्य-धौत अति मंजु दिगंगनाएँ,
 क्या ही अनादि नभ और अनन्त भूपै
 फैली हुई सुभग सुन्दर चंद्रिका है ।

शाखा-समूह हिम-दीधिति-धौत-सा है,
 हैं पत्र-पुष्प सत्र शोभित कौमुदीमें,
 लोनी लता ललित-पेशल बल्लरीकी,
 आराममें अकथनीय प्रभा लसी है ।

उत्कंठिता सरस रागवती मनोज्ञा
 बैठी हुई सलिलके तटपै चकोरी
 है मंत्र-मुग्ध मनसे लखती शशीको
 प्रत्येक बार निज पक्ष फुला रही है ।

क्या स्वच्छ नीर-मय निर्झर हो रहे हैं,
 जो शब्द मन्द करते सित यामिनीमें ।
 मानों सभी निरत विश्रुत गानमें हैं,
 गाते हुए विरुद चैत्र-विभावरीका ।

अत्युज्ज्वला रजनिकी कमनीयतामें
 है व्योमकी सुभग मेचकता अनूठी,
 कैसी समृद्धि अवदात निसर्गको है
 मानो सतोगुणमयी धरणी हुई है ।

जो दार-पाल-गानि निभूत हो रही है,
 मुद्रामयी अंगन अंकन-शुक्त सो है,
 होनी समीर-रानहार मभीरतासे
 निद्रा-निमग्न सब संग्रुति हो रही है ।

निश्राम-भामपर मंजु मयूम-माला
 होती निविष्ट मूढ-मध्य मन्दाक्ष-द्वारा,
 सोती हुई निभु-मुग्धी रमणीजनोकी
 आदर्श-से अचरिते शुक्त जूमती है ।

श्रीरंग-मोह-परिचालन-शील बाला
 हैं सो रहीं सकल भूपर उर्ध्वशी-सी,
 आसक्त नेत्र पड़ते जिस कामिनीपै
 रंभा-समान दिखला पड़ती वही है ।

प्रत्येक सुप्त रमणी अति ही मनोज्ञा
 निद्रा-निमीलित-दृशी अत्र ईदृशी है,
 मानों विलोक रजनी दृढ़-वद्ध होके
 ले अंकमें कमलिनी अलि सो गई है ।

कैसी प्रसुप्त लघ्वि रूप-प्रदर्शिनी है,
 आँखें जहाँ निरखतीं रुकतीं वहीं हैं,
 जैसे समूह पटु-गारुड-नीलकोंके
 आकृष्ट नेत्र करते द्रुत दर्शकोंके ।

सोतीं पड़ीं अवनिते परिचारिकाएँ,
 है गात्रकी न जिनको सुधि वल्लकी भी,
 आधे-खुले सुभग मंजु उरोज ऐसे
 जैसे 'अनूप' कविकी कविता लसी हो ।

देखो, सरोज-कर एक उरोजर्प है,
 है दूसरा मुमुक्षु के मुण्डको शिपाण,
 मानों स-नाल सरसीरुह शम्भुपै या
 राक्षसपै स-निस कैरवती कली है ।

है पुंडरीक-राम आनन चारुशोभी,
 आभा कपोलपर कोकनशोभमा है,
 इन्दीवराम्बक समावृत है निशामें,
 है योषिता सकल मंजु मृणालिनी-भी ।

है एक जो मुमुक्षु श्यामल आश्रयाली,
 अत्यंत गौरतम तो मुग्न दूसरीका,
 सिन्दूर-लिप्त मृदु आनन अन्यका है,
 देखो, त्रिरंग विधु-विम्ब-मयी त्रिवेणी ।

भ्रू देख देख मनमें यह भ्रान्ति होती
 कोदंड दो कुसुमशायकके पड़े हैं,
 हैं पक्ष्म जो विनत बन्द विलोचनोंमें
 वे पंच-व्राण-शर-में उतरे हुए हैं ।

विम्बोष्ठ है सुघर, जो कुछ ही खुले हैं,
 है मध्यगा धवलमा द्विज-राजिकी भी,
 श्री-युक्त ओस-कण सुन्दर मोतियों-से
 मानों प्रफुल्ल सरसीरुहमें पड़े हैं ।

क्या ही प्रकोष्ठपर कंकण सोहते हैं,
 हैं गुल्फमें विशद बंधन नूपुरोंके,
 ज्यों ही सचेष्ट हिलते अँग कामिनीके
 निर्घोष पंचशर-दुंदुभिका सुनाता ।

श्वेताभ कूलपर संस्थित पथरोंपे
 देती निसर्ग-शिशुको थपकी नदी है,
 ऐसे सुमन्द रवको सुनती-सुनाती
 सीमंतिनी सकल भूपर सो रही हैं ।

हूवी सुपुत्ति-सरसी-रसमें, निशामें,
 हैं कामिनी-कमलिनी अति ही मनोज्ञा,
 मूंदे हुए सुभग अंचुज-अंचकोंको
 आदित्यके उदयका क्षण देखती हैं ।

पर्यंक-वाम-महिपै यह गौतमी हैं
 गंगा, लखो, शयन-दक्षिणमें पड़ी है,
 दोनों सखी परम रूपवती गुणाढ्या
 हैं सेविका-बलयकी मणियाँ मनोज्ञा ।

हैं गन्धसार-मय गेह-कपाट सारे,
 स्वर्णाभ मेचक हरे परदे पड़े हैं,
 सोपान-मार्ग चढ़ सम्मुख दृष्टि डालो,
 सिद्धार्थ-रंग-गृह है यह मोददायी ।

कौशेयके परम पूत बिछे बिछौने
 जो कंज-पत्र-सम सौख्यद अंगको हैं,
 हैं दाम भित्तिपर सिंहल-मौक्तिकोंके,
 यों अन्तरंग गृहका हँसता खड़ा है ।

नेत्राभिराम लल मर्मरकी बनी है,
 उन्कीर्ण चित्र जिसमें ब्रज-रत्नके हैं,
 कैसे गवाक्ष अति शोभित चंद्रिकासे
 भृंगप्रिया-मुकुल-सौरभ-गेह-से हैं ।

अजिह्म जीव, विमल-वपुः सो जगो
 तपोमहिम्न, समुद्रविजयता,
 जमीरुण ही योग धरन-मानसी
 चकारिणी तव विभोक्त्रे लगी ।

मज्जीमग हो अवि भोक्त मरुत्त
 ममीमो भीम कुमारके गर्ह,
 कसोडका चम्पन लीन बाग ले,
 कहा, “ अहो ! बाग, उद्यो, दया करो ।

“ मन्दीप मर्मस्थ तन्मूलव्यागमो
 प्रमाद-निद्रावग हो गर्ह यदा
 दृष्ट मृगो भीषण लीन म्वम, तो
 दृष्टा स-गोमांन अगिर, मे उदी । ”

“ अहो अहो ! अम्बुज-ल्योवनं प्रिये,
 कटोम-गर्भे, अनुगम-गर्भिते,
 दृष्टा तुष्टे क्या दृष्ट, म्वम क्या दृष्टा !
 कहो, कहो, शोध, अधीम मे दृष्टा । ”

“ प्रभो, विद्योका पहले मभात नो
 विशाल था सो वृष दीध देहका,
 महाबली, उन्नत-माल, विक्रमा,
 डकारता था वह वृष-वृमंक ।

“ प्रदीप्त थी रत्न-प्रभा ललाटप,
 यथा उगा ऋक्ष हिमाद्रि-शृंगप,
 समस्त पाताळ-मही-प्रकाशिनी
 अहीशकी थी मणि गौर भोगपै ।

“ उसी घड़ी एक ध्वजा उठी, प्रभो,
चतुर्दिशा वेष्टित दिव्य ज्योतिसे,
समस्त भू-मंडलको प्रकाशती
अवलन्त माणिक्य-समूह-संगुता ।

“ मरीचि-माला-मयि वज्रयन्तिका
प्रकाशती थी हृदयान्धकार भी,
स-मोद प्राणी इस भौतिसे हुए,
मिली उन्हें इच्छित दिव्य ज्योति ज्यों ।

“ चला तदा मंद सभार पूर्वसे,
झड़ी प्रसूनावलि केतु-नामसे,
प्रकाशिता चंचल चेलपै हुई
पुनांत दैवी लिपि स्वच्छ-वर्णिनी ।

“ तृतीय जो स्वप्न हुआ, कृपानिधे,
लगा मुझे दुःखद सो अतीव है,
अहो ! हुई अम्बर-चारिणी गिरा,
‘ समीप ही है अब काल आ गया । ’

“ विलोकने दक्षिण-पार्श्वमें लगी,
लगा हुआ शून्य पलंग आपका,
पड़े हुए केवल वस्त्र थे वहाँ
वही, प्रभो, थे अवशेष आपके ।

“ पड़ा हुआ था कटि-बन्ध आपका
लगा मुझे दंशन-शील सर्प-सा,
मदीय केयूर अदृष्ट हो गये
लगा मुझे कंकण भार-रूप ही ।

“ यह निर्वन प्रीति, यशोधरे,
 अति अभेग, अलेश, अक्ताव्य है—
 यदि संगोग, विगोग अनर्ग है,
 यदि विगोग, संगोग अवश्य है ।

“ निद्रित है तुमका, किस भाँति मैं
 रजनि-वासर हूँ यह सोचता,
 ‘ किस प्रकार निरामय बिद्व हो,
 मनुज-जीवन सौख्य-समेत हो । ’

“ समयसे चलती किसकी, प्रिये,
 नियति भी सब भाँति अलंघ्य है,
 दुख पड़े हमपै तुमपै कहीं,
 उभय संयमसे सह लें उसे ।

“ अपरके दुखसे दुख है मुझे,
 अति असह्य, प्रिये, अघ विश्वके;
 किस प्रकार लगा गृहमें रहे
 मन सदा सब भाँति चरिष्णु है ।

“ सकल जीव मुझे प्रिय विश्वके,
 अधिक हैं उनसे कुल-जातिके,
 इन सभी जनमें सब भाँतिसे
 प्रियतमा, तुम हो मुझको, प्रिये ।

“ हृदय-खंड मदीय, यशोधरे,
 निहित है वह जो तव गर्भमें,
 जनकसे, तुमसे, सब विश्वसे
 अधिक आनंद-दायक है मुझे ।

“ अब करो दुख-त्याग, वरानने,
 शयन स्वस्थ करो, दृग-मूढ़ लो,
 फिर न हो कटु स्वप्न इसीलिए
 सजग हूँ स्थित मैं, तुम सो रहो । ”

शिखरिणी

तदा गोपा सोई, सिसक कर दुःस्वप्न-दुखसे
 पुनः सोते सोते ‘समय अब आया,’ सुन पड़ा,
 प्रियाके सोते ही विगत कर चिन्ता हृदयकी
 लखे फूले तारे रजनिकर-संयुक्त नभमें ।

निहारे तारे जो चमककर मानों कह रहे,
 ‘तमिस्रा है आई जब सुख करो, या दुख हरो ।
 बनो चाहे राजा सुख-विभवसे युक्त अथवा
 तपस्याके द्वारा सकल जगका मंगल करो ।’

कहा, “ हे हे तारो, समय वह आया निकट ही
 कखूँगा मैं रक्षा भव-रुज-निमग्ना धरणिनी ।
 नहीं हूँगा राजा मुकुट सजके वंश-गत जो,
 यहाँ आया हूँ मैं सकल जगका ताप हरने ।

“ न इच्छा देशोंको विजित कर होऊँ नृपति मैं,
 बहेगी धारा-सी मम आसि न संग्राम-महिमें,
 न होंगे लोहूसे हय-गज कभी रक्त रणमें,
 कलंकीभूता यों अब न मुझको ख्याति करना ।

“ गुफा होगी मेरी वसति, सुख-शय्या धरणिनी,
 त्वचा वृक्षोंकी भी परम सुखकारी वसन-सी,
 सदा संगी-साथी विपिनचर होंगे सुहृद-से,
 फिखूँगा योगी हो सुखद जगके भोग तजके ।

“अहो ! मेरी बामा, सुत, जनक, वासी नगरके,
 सहो जैसे-तैसे कुछ दिवस लें जो दुख पड़े ।
 तुम्हारे दुःखोंसे यदि सुखमयी ज्योति प्रकटे,
 सभी प्राणी पावें सुपथ उस निर्वाण-गृहका ।

“अतः जाता हूँ मैं, समय ढिग, संकल्प दृढ़ है,
 न लौटूँगा प्यारी, जब तक न होगी सफलता,
 धराशायी होगा जब तक न सो केतु अवका,
 ध्वजा ऊँची होगी जब तक न सो, जो लख पड़ी ।

“तमिल्ले, हे निद्रे, कमल-दल यों वन्द कर दो
 कि गोपाके दोनों नयन-पुट भी आवृत रहें;
 अहो ! जोत्ने, बामा-अधर अब संपुट कर दो
 सुनाई दें ‘हाहा—’ वचन उसके जो न मुझको ।

“अहो ! सोते सोते वचन सुन ले, हे सहचरी,
 सदा तू देती थी परम सुख, है दुःख तजना,
 न छोड़ूँ तो भी तो अति दुखद है अन्त सबका
 जरा है, बाधा है, मरण-गाति है, जन्म फिर है ।

“प्रिये, निद्राका-सा अगमतर लेखा मरणका,
 धराशायी होना, अचल बनना, जाड्य गहना,
 हुई म्लाना माला तब फिर कहाँ गंध उसमें ?
 दशा तैलाम्यंगा जब न रहती, दीप बुझता ।

“यथा शाखाओंमें अति लहलहे पत्र लगते,
 धराशायी होते, पतझड़ उन्हें शुष्क करता,
 कुठाराघातोंसे विटप कटते, दारु बनते,
 न ऐसे खोऊँगा परम प्रिय है जीवन मुझे ।

कलत्र सुता, सखियाँ असंज्ञ थीं,
 प्रसिद्ध वे भी अविकल्पनाय्य हैं,
 परन्तु तो भी खुल भेद यों गया
 कपाट जैसे रँग-गेहके खुले ।

खुले हुए गेह-कपाट थे पड़े,
 प्रगाढ़-निद्रा-ग्रश द्वार-पाल थे,
 चले युवा कृष्ण स्वतः स्वतंत्र हो
 यथा अ-त्रंदी वसुदेवके बिना ।

अधीर हो शीतल श्वास ले बहा
 समीर लोटा चरणारविन्दपै,
 प्रसूनने स्वागत चित्त खोलके
 किया उपेक्षा करके प्रभातकी ।

हिमाद्रिसे सागर लौं चतुर्दिशा
 उठी नवाशा तडिता-तरंग-सी,
 महान संगीत गभीर व्योममें
 तदा हुआ विश्रुत जागरूकको ।

मनोहरा ज्योति जगी दिगन्तमें,
 विमानपै थे समवेत देवता,
 त्रिमुग्ध दिग्पालक-वृन्द भी सभी
 खड़े हुए निश्चल वद्ध-हस्त थे ।

यशोधरा गर्भ-युता त्रिदेहजा,
 कुमार साकेत-नरेश राम हैं,
 स-दुःख सीता-वनवास था वहाँ,
 स-हर्ष सिद्धार्थ-प्रवास है यहाँ ।

कल्पवृक्ष, मणिमय कल्प वी,
 पण्डित ये भी भविकल्प-साधक हैं,
 भानु तो भी लूक भेद भी मना
 कला-बैरी मैं मेरुके लुटे ।

लुटे हुए मोह कपार से पड़े,
 प्रमाद निद्रा-वश दाह पाक में,
 चले पूजा कृष्ण स्वतः स्वतंत्र हो
 यथा-अन्वरी वपुःदेवके बिना ।

अधीर हो शीतल इषाग ले चढ़ा
 मणीर लोह चण्णाभिरुधे,
 अग्रजने स्वामन चित्त स्फोटके
 किमा उपेक्षा कर्मके प्रभावकी ।

हिमाद्रिमें सागर लो चतुर्दिशा
 उदी नवाशा तटिता-तमंग-भी,
 महान मंगीन मणीर व्यामर्षे
 तदा दृष्टा विश्रुत जामरुक्की ।

मनोहम ध्याति जगत्तिमन्तमे,
 विमानर्षे ये समवेत देवता,
 विभुश्च दिग्पालक-वृन्द भी मभी
 लवङ्ग दृष्ट निश्चल बद्ध-हस्त ये ।

यशोवरा नन-युता विदेहना,
 कुमार भाकेत-नरेश राम हैं,
 स-दुःख गाता-वनवास था वहाँ,
 म-हय मित्राये-प्रवास है यहाँ ।

शार्दूलविक्रीडित

“ ब्रह्मों, विष्णु, महेश, दक्ष, मघवा, नीरेश, यक्षेश भी,
 सारे शैल, नदी, शशी, मिहिर भी, अंभोधि भी, वायु भी,
 दैत्यादैत्य, मनुष्य, नाग, खग भी, जो गूढ़ वा व्यक्त हों,
 अंगीभूत सभी विराट-चपुके, कल्याणकारी बनें ।

“ जो कीकाल-स्वरूप हो विहरता मध्याह्नके घाममें,
 पृथ्वी, अग्नि, समीर, व्योम, जलमें साकार जो भासता,
 विश्वात्मा वह निर्विकार जगकी उत्पत्ति या नाशसे,
 रक्षा है करता सदैव सबकी त्रैलोक्य-त्राता वही ।

प्रतानिनी-पुंज हिला समीरमें,
 तरंगमालाकुल रोहिणी हुई,
 सहस्रशः भानु सहस्र-भानुके
 तुरन्त छूटे महिको दिगन्तसे ।

तडागके कूल सुवर्णसे मढ़े,
 हिरण्य बन्धूक-प्रसून भी हुए,
 बने सभी पादप जातरूपके
 सु-चारु चामीकर-सी लसी मही ।

हुतविलम्बित

यह न थी स्थिति हा ! उस ग्रामकी
 कपिलवस्तुपुरी कहते जिसे;
 सुर-समीहित आनंद-सिन्धुमें
 उमड़ता दुख-अंबुधि था वहाँ ।

श्रवणमें घुसता खर-शूल-सा
 बिहगका मृदु गायन उग्र हो,
 अनलके सम दाहक हो गई,
 अति प्रफुल्लित कोकनदावली ।

गगनकी वह सुन्दर लालिमा,
 निधनकी भयदा रसना बनी,
 सरितकी लहरें असु-लेहिनी,
 लहरने खलु व्यालिनि-सी लगीं ।

हिल उठीं बहु वल्लरियाँ यथा
 कँप उठीं सह विज्जु-प्रहार ही,
 जलज-पल्लव भी जल-बुन्दके
 मिप हुए बहु रोदन-लीन थे ।

जग पड़ी उस काल यशोधरा
 नयन खोल यदा लखने लगी,
 शयन शून्य विलोक हुई दुखी,
 शुक उड़े उसके करसे तभी ।

हिम यथा दलता जलजातको,
 निगलता विधुको अघ है यथा;
 दयितकी अनुपस्थितिने तथा
 मन किया हत वज्र-विघात हो ।

अवगता घटना द्रुत हो गई
 रजनिमें पति-देव-प्रयाणकी,
 तदपि कातर हो रँग-गेहमें
 बंह लगी उनको अवलोकने ।

रुदनसे परिप्लावित-लोचना
 हृदयको पकड़े निज हाथसे
 विलखती बहु भौंति यशोधरा
 विरह-वातुल हो बकने लगी—

“ अहह, नाथ, हहा ! मम प्राण हे !
 हृदयके धन, जीवन-सार हे !
 विरह-वारिधिमें तजके मुझे
 कब, कहाँ, किस ओर चले गये ?

“ कुपरिहास मुझे इस भौंतिका
 न रुचता, अब नाथ, कृपा करो;
 प्रकट होकर दर्शन दो मुझे,
 न तु गिरी, विलखी, तड़पी, मरी ।

“ स्मरण आप करें जल-कौलिन
 हृदयपै जत्र कंज-कली लगी,
 बहुत-ही प्रभु हेसित हो उठे
 अधिक कर्कश थी मम पाणिसे ।

“ कर वही तजके—जिसको कभी
 स-रति नाथ, किया भृत आपने—
 चल दिये चुपके पर-देशको
 कर मुझे असहाय-अनाथिनी ।

“ नल-नरेश यथा निज नारिको
 लख प्रसुप्त विहाय चले गये,
 उस प्रकार प्रभो, किस दोपसे
 तज मुझे तुम हाथ ! चले गये ?

“ प्रिय, असंभव है सत्र भाँतिसे
 इस प्रकार मुझे तजना तुम्हें;
 अति-अमोघ-विमार्जन-लेपसे
 कठिन है कर-चिह्न बिगाड़ना ।

“ गत भवान्तरमें मुझको, प्रभो,
 विपुल बार किया परिणीत है,
 वश किया जिसको इस भाँतिसे
 अब उसे प्रभु, भूल गये कहाँ ?

“ प्रणय-अंकुशसे मन-नागको
 पलट दो मम ओर, कृपानिधे,
 यह विशाल वियोग-वनस्थली
 लहलही अति है, मरु-भूमि हो ।

जब कुछ-कुछ आई चेतना अंगनाके,
 जल-रहित झखी-सी व्याकुला हो उठी सो;
 मुखपर बरसाती आपदाकी घटाएँ
 अलि-अवलि धिरी थी आर्ति-कादम्बिनी-सी ।

वह उपवन-भूपै जा पड़ी व्याकुला यों,
 विदलित बन-देवी मूर्छिता हो गई ज्यों,
 अगणित कण छाये स्वेदके भालपै जो
 वह लख पड़ते थे भाग्य ही रो रहा ज्यों ।

विलख-विलख गोपा विप्रयुक्ता कृशांगी
 निरख-निरख स्वामी-मार्गको रो रही थी,
 चिलक-चिलक रोये चूनरीके सितारे,
 पर वपुष जलानेको न पर्याप्त वे थे ।

कच-तिमिर-त्विषाके वृन्दसे बद्ध-आभा
 नव-रवि-कर-श्रेणी-शीर्ष-सिंदूर-रेखा,
 जलद-हत चिता-सी तेज-हीना असेता
 प्रकट कर रही थी मृत्यु-आसन्नता ही ।

अमित अरुण होके सूर्य भी सान्त्वनाको
 दुःख-युत कहने थे, “ पुत्रिके, धर्म-धीरे,
 विधि-विहित-व्यवस्था कर्मसे प्राप्त होनी,
 तपन बन गया हूँ, व्रमता हूँ सदा ही । ”

अति दुःखित धरा भी पिंगला हो गई थी,
 स-दुःख पवनके थे आ रहे मंद झोंके,
 सकल गगन नीला शोकसे हो गया था,
 करुण-रुदन, हाहा ! निन्नरिंने मचाया ।

अवगत कर सारा वृत्त शोकाकुला वे
 अविरल जल-धारा लोचनोंसे बहातीं,
 बहुविधि समझातीं, पोंछतीं अश्रु भी वे,
 स्मरण फिर दिलातीं गर्भका स्वामिनीको ।

मन्दाक्रान्ता

ज्यों ही जाना अवनिपतिने वृत्त तो बज्र टूटा,
 भूपै ऐसे वह गिर पड़े शुष्क एरंड जैसे,
 त्यों ही ऐसा निखिल नगरीमें समाचार फैला,
 यात्रा जाने कत्र, किसलिए, आज सिद्धार्थने की ।

धाये प्राणी सकल पुरके, भूपके द्वार आये,
 जैसे-तैसे विदित करके वृत्त डूबे दुखोंमें,
 धारा-बाही सलिल बहता था दृगोंसे सभीके
 गंगा पद्मा हिम-कुधरसे ज्यों निराधार छूटीं ।

रोगी वाला जरठ शिशुके वृन्द ही सन्निधमें थे,
 सारे प्राणी इतर नृपके द्वारपै रो रहे थे,
 उच्छ्वासोंका अनिल बहता था महा चंडतासे,
 आँखोंमें भी उदधि उठके मारता था हिलोरे ।

मानों भूके विरह, विपदा, क्लेश, संताप, पीड़ा
 रौने आये नृपति-गृहके द्वारपै देह-धारी,
 हाहाकारी जन-रव हुआ अश्रुके कान फटे,
 डूबी सागी विपति-विकला राजधानी दुखोंमें ।

सारी नारी कथन करतीं दुःखसे दग्ध होके
 “ हाहा ! गोपा नवल रमणी मन्दभाग्या बड़ी ही,
 पाया ऐसा धव मधुरता-धाम था जो यशस्वी,
 खोया भी हा ! कतिपय अभी व्याहके वार बीते । ”

१४—संवाद

वंशस्थ

तुरंगको, छन्दको, स्व-वेशको
विहाय सिद्धार्थ चले प्रसन्न हो,
कुरंग जैसे दृढ़ जाल तोड़के
स्वतंत्र सानन्द पलायमान हो ।

कुमार आगे जिस ग्रामसे कढ़े,
कदन्न-भिक्षा रुचि-युक्त की जहाँ,
कुतूहल-स्तम्भित पौर भी वहाँ
विलोकते थे छवि नव्य भिक्षुकी ।

कुशेशयों-से दृग-हस्त-पादको
विलोक सामुद्रिक भी सतर्क थे,
“ समस्त हैं लक्षण भूमिपालके,
तथापि क्यों भिक्षु कषाय-वास है । ”

शकेश-दिव्यांग-प्रभा विलोकके
 विनीत भावान्वित पान्थ बोलते,
 “ कृपानिधे, हो यदि आपकी कृपा
 चले चले साथ सुदूर देश लौं । ”

स-बाल नारी-नर, वृद्ध, रुग्ण भी,
 विलोकनेको प्रभुको स्वनैत्रसे
 समूह होते, जब ग्राम-मध्यसे
 कपायधारी कइते शकेश थे ।

विलोक कोई श्रम-खिन देवको
 किलिंज थे लाकर शीघ्र डालते,
 विनीत होके कहते कुमारसे
 “ यहाँ विराजें क्षण एक तो, प्रभो, ”

विलोकके सुन्दरता शरीरकी
 प्रफुल्ल थे लोचन पौर-वृन्दके,
 चले सभी सद्य विहाय संगमें
 दरिद्र-से कंचन टूटते हुए ।

तुषार-सा गौर शरीर मंजु था,
 कुरंग-से अंबक तर्क-प्राय थे,
 ललाट था उन्नत चन्द्र-खंड-सा,
 प्रफुल्ल था आनन ऐंठरीक-सा ।

परशु था खड्ग न पात दंत था,
 न थे पर-जाल तथा न पादुका,
 न तत्र ही था शिरस न पैर थे,
 रजस्य था भूषिका न रंजक ।

कुतुब्बिसे पादप पारिजातको
 पयोधिको क्षार किया विरंचिने,
 न भेजता जो इनको अरण्यमें
 उसे महाविज्ञ पुकारते सभी ।

बिलोक जाते पयमें शकेशको
 उठे मनोभाव इसी प्रकारके;
 समीर था मन्द, स-मेव व्योम था,
 अनुष्ण था काष्ठ, अघृष्टि मार्ग था ।

चले, पहुँचे जब दूर देशमें
 सुरापगा पार किया कुमारने,
 कछारसे दक्षिणको गये जहाँ
 निरंजना-निर्झरिणी-प्रवाह था ।

तदा लखी श्रीवनने वसुन्धरा
 प्रमूर्ण हिंगोष्ठ-अँकोट-गुल्मसे,
 सुहावने वृक्ष मधूकके जहाँ
 बना रहे थे सुखदा वनस्थली ।

पड़ी वहीं सैकत फल्गु मार्गमें,
 अहार्य जो फोड़ चली सपाटमें,
 विदारती स्थूल शिला गई गया—
 पुरी प्रसिद्धा मृत-प्रेत-नारिणी ।

पड़े कई सैकत वप्र मार्गमें
 मरुस्थली है उरु-विल्वकी जहाँ,
 उसे किया पार, मिली उन्हें तदा
 हरी-भरी शाद्वल-भूमि सामने ।

अजस्र ही निर्झरके प्रवाहमें
 विहार-संयुक्त मराल-युग्म थे,
 जहाँ समुत्फुल्ल लसे तडागमें
 सु-गौर-नीलारुण वारिजात भी ।

तृणावली-मंडित गेहमें वहाँ
 निविष्ट थे कर्षक सेन-ग्रामके;
 उसी महीसे कुछ दूर द्रप्रपै
 सन्मोद बैठे प्रभु वृक्षके तटे ।

विचारने श्रीधन बैठके लगे
 मनुष्य-प्रारब्ध-रहस्य ध्यानसे,
 विरोध भूका, परिणाम कर्मका,
 पुराणका आशय, तत्त्व शालका ।

विचारके सृष्टि-विनाश विद्वका
 विलोकने वे उस भेदको लगे,
 तमिन्न आता जिस ज्योति-पुंजसे,
 प्रकाश जाता जिस अंधकारमें ।

यद्यैव दो अमृद-मण्य सेतु-स्ता
 सुरंग हो रुद्र-शरास फैलता,
 तद्यैव है माष्यम जगन्मृत्युका
 त्रिलोकमें जीवन-नामधेय जग ।

प्रकाश देता द्यु-रंग हो यथा
 स-धर्म-नीहार सुरेश-चाप है,
 विहीन होके फिर नो हर्षः हर्षैः
 वारण होत सप्त-धर्म-रंगने ।

उसी घड़ी एक उरभ्र-वृन्द ले
अजाप आके निकला अरण्यसे,
विलोकते ही गत-संज्ञ देवको
समीप आया अवलोकता हुआ ।

अचेत थे, लोचन थे मुँदे हुए,
बने महा पांडुर दन्त-वास भी,
प्रचंड था आतप, किन्तु देहपै
न था कहीं स्वेद, न रेणु धूलिके ।

तुरन्त ले पल्लव एक वृक्षसे
बना लिया छत्र उरभ्र-पालने,
वितान-सा तान दिया शकेशकी
महाकृशा आतप-दग्ध देहपै ।

कदम्ब-शाखा पनपी निमेषमें
यथा नया जीवन पा हरी हुई,
समीरसे ढोल उठी तुरन्त ही
हिली महा सौख्यद ताल-वृन्त-सी ।

हुए जभी स्वस्थ, उठे विलोकते,
समक्ष देखा उस भेष-पालको,
महा पिपासू वह थे, कहा, “ सखे,
तुरन्त दे भाजन दुग्ध-पूर्ण द । ”

परन्तु बोला वह, “ हे कृपानिधि,
मरण अस्पृश्य, निराल गुरु है
अर्द्ध है पात्र अपात्रता, प्रभो,
कृपा है शत्रु, कृपात्र शत्रु है । ”

सुना जभी वाक्य जगन्निवासने
 कहा, “ न ऐसा कह तू, स्व-पात्र दे,
 बने कहीं जो सम-दृष्टि तू, सखे,
 गवाशमें ब्राह्मणमें न भेद है ।

“ न रक्तमें वर्ण-विभेद है, सखे,
 न अश्रु होते बहु जाति-पाँतिके,
 समस्त भू-मंडलमें विलोक तू
 समान-सू मानव-जाति एक है ।

“ विलोक तू, भाल त्रिपुंड-हीन है,
 वैधी नहीं है कटिमें कृपाण भी,
 तुला तथा पोटलिका न पास है,
 न विप्र हूँ, क्षत्रिय हूँ न वैश्य हूँ ।

“ अतः मुझे संप्रति शूद्र मान तू,
 निकृष्ट हूँ मैं तब जाति-बंधु-सा
 वयस्य, दे दे द्रुत दुग्ध-पात्र तू,
 पिपासुको इष्ट पयःप्रपान है । ”

शकेशको भाजन मेघ-पायनं
 दिया, पिया श्रीर द्रुष्ट प्रमत्त वे;
 तुग्न आया बल अंग-अंगमें
 समेत-आशीष विदा किया उसे ।

मन्दाक्रान्ता

पति ही वे पथ, वन सुखी, स्वस्थतामें विगत,
 आहुं रागा गहन-पथमें गीति-पूणा मनोआ,
 गाती-गाती मुदित निकली मार्गमें देवदामी,
 जो जाती थी नृपति-गृहको भगवत्पाद गाने ।

सुना जभी वाक्य जगन्निवासने
 कहा, “ न ऐसा कह तू, स्व-पात्र दे,
 बने कहीं जो सम-दृष्टि तू, सखे,
 गवाशमें ब्राह्मणमें न भेद है ।

“ न रक्तमें वर्ण-विभेद है, सखे,
 न अश्रु होते बहू जाति-पाँतिके,
 समस्त भू-मंडलमें विलोक तू
 समान-सू मानव-जाति एक है ।

“ विलोक तू, भाल त्रिपुंड-हीन है,
 बँधी नहीं है कटिमें कृपाण भी,
 तुला तथा पोटलिका न पास है,
 न विप्र हूँ, क्षत्रिय हूँ न वैश्य हूँ ।

“ अतः मुझे संप्रति शूद्र मान तू,
 निकृष्ट हूँ मैं तब जाति-बन्धु-सा
 वयस्य, दे दे द्रुत दुग्ध-पात्र तू,
 पिपासुको इष्ट पयःप्रदान है । ”

शकेशको भाजन मेष-पालने
 दिया, पिया क्षीर हुए प्रसन्न वे;
 तुरन्त आया बल अंग-अंगमें
 समेत-आशीष विदा किया उसे ।

मन्दाक्रान्ता

पीते ही वे पय, वन सुखी, स्वस्थतासे विराजे,
 आई वाणी गहन-पथसे गीति-पूर्णा मनोज्ञा,
 गाती-गाती मुदित निकलीं मार्गसे देवदासी,
 जो जाती थीं नृपति-गृहको मंगलाचार गाने ।

प्रतिष्ठिता थी वह सर्व ग्राममें
 गुणान्विता, आदर-गौरवान्विता,
 परन्तु था शोक उसे अजस्र ही
 कि गेहका आँगन पुत्र-शून्य था ।

रही मनाती वह देवता सभी
 दिनेश-लक्ष्मी-शिव पूजती हुई,
 प्रसूनसे, अक्षत-धूप-दीपसे
 सदा सपर्या सजती स-काम थी ।

अरण्यमें जाकर एक बार सो
 विनीत हो सादर मानने लगी—
 “ सुपुत्र हो जो वनदेव, तो प्रभो,
 सहर्ष क्षीरोदन-दान मैं करूँ । ”

अपत्य कालान्तरमें मिला उसे,
 महा सुखी पूरित-कामना हुई,
 चन्द्री मुजाता नव-जात पुत्र ले
 स-हर्ष क्षीरोदन ले अण्यको ।

यदा पट्टिची बटके मर्मापमें
 स-देह धँटे ‘ वनदेव ’ का लम्बा,
 प्रशान्त प्रसन्न थे विराजते
 प्रत्यम्ब दोनों भुज जानुर्धरे ।

विन्दोचनेंमे अति दिव्य उद्योति थी,
 विज्ञात थी पुण्य-प्रभा लयाटनी,
 प्रसन्न था अन्नन, मूर्ति मीम्य थी,
 समुद्रकटा दंड दुषाम-क्षेत्र थी ।

शकेशको देख अतोत्र भक्तिसे
सदेह जाना वनदेव ही उन्हें,
सराहती स्वीय सुभाग्य सुन्दरी
गई सुजाता कैपती सनीपमें ।

स-पुत्र वैठी युग हाथ जोड़के
शकेशसे यों कहने लगी सती—
“ अरण्यको रक्षक, आज आपने
दिपा मुझे दर्शन, की बड़ी कृपा ।

“ प्रभो, पकाया भवदीय भोगको
सुनिष्ट क्षीरोदन गंध-युक्त है,
अकिंचनाके यह पत्र-पुष्प ले
उसे कृपासे कृत-कृत्य काजिए । ”

बड़ा दिया स्वर्ण-शराव सामने
बड़ा दिया चन्दन-पुष्प सांसपै,
कुलंगनासे कुछ भी कहे बिना,
शकेश भी भोजन-लीन हो गये ।

बना हुआ पायल स्वादु-युक्त था,
शकेश साके बल-युक्त यों हुए
नितान्त भूले उपवास-काल दे,
सुधा किये जो दत्त स्वतः हो गये ।

नरस्थलीमें उड़ते विहंगको
पधा कहीं सागर-तीर आ मिले,
मिले पुनर्जीवन-सा पुनः उसे
बलिष्ठ हों वह, प्रबल दिव्य हो ।

तथैव पा पायसको सुखी हुए,
 तुरन्त आया बल अंग-अंगमें,
 जगी सु-आशा मनमें उगा-सगा
 सरोज-सा आनन कान्त हो उठा ।

स-हर्ष पूछा, “ अथि चारुलोनने,
 बल-प्रदा हे यह वस्तु कौन-सी,
 न याचना की तुझसे, परन्तु क्यों
 स-मोद लाई यह भोज्य सामने ? ”

कहा, “ प्रभो, पायस स्वादु-युक्त है,
 बसा हुआ केसर-तेजपत्रका,
 स-हर्ष लाई भवदीय हेतु ही
 बड़ी कृपा की सुत-दान जो दिया । ”

त्रिलोक-उद्धारक शाक्यदेवने,
 अपत्यके ऊपर हाथ फेरते,
 कहा, “ बड़े, हो सुत दीर्घ आयुका,
 सदा रहे जीवन सौख्य-पूर्ण ही ।

“ सुदेवि, तूने अति प्रेम-भावसे
 प्रदान क्षीरोदन जो किया अभी,
 हुआ मुझे द्वैध प्रमोद देखके,
 मिला तुझे पुत्र, प्रसन्न तू हुई ।

“ न देव, साधारण एक जीव हूँ,
 दरिद्र हूँ, राजकुमार था कभी;
 परन्तु इच्छा यह है कि बोध दूँ
 तमोगुणाक्रान्त समस्त विश्वको ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।
 श्रीकृष्णाय नमः ॥ १ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।
 श्रीकृष्णाय नमः ॥ २ ॥

۱۰
 ۱۱
 ۱۲
 ۱۳
 ۱۴

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 श्रीकृष्णाय नमः ॥
 श्रीगुरुभ्यो नमः ॥
 श्रीगणेशाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ४ ॥

[illegible]

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
 श्री कृष्णाय नमः
 श्री गुरुभ्यो नमः
 श्री गणेशाय नमः



फणी उठाके फन नाचने लगा,
कपोतने कूजन भोगपै किया,
महीरुहोंपै कपि-संग खेलती
प्रसन्न थी चंचल वृक्षशायिका ।

तुरन्त छोड़ा निज भक्ष्य श्येनने,
दुरन्त आतापि निरामिषा हुई,
अरण्यमें कोकिल कूजने लगे,
कड़ा खगोंका स्वर एक-साथ ही—

शिशिरिणी

“ सदा सच्चे साथी सकल जगके एक तुम हो,
तुम्हींको है, स्वामिन्, सुकर भव-उद्धार करना,
तुम्हींने जीता है भव-भय तथा क्रोध, मद भी,
करो रक्षा भूकी, स-पशु-खग-शाखी मनुजकी ।

“ धरा पापोंसे है अब दब रही घोर दुःखमें,
भरगमा है भारी निग्विज महिको, शक्त तुम हो,
तुम्हारी इच्छा है सकल जन मर्द्धम-रत हो,
तमिन्ना आई क्या जनन करने नर-राजके । ”

वसन्तविरह

वसन्तके निकट जाय न जाय देते,
हे प्रियन्ते मनन सखि-सखि-देते,
ऐसा मधुर लज्जित-पराधरोध,
आया अनन्य मन लेकर मधुर-मेत ।

यही महावृक्ष सुदीर्घ-काय है,
 चिरायु है, जीवन एक कल्प लौं,
 न शुष्क होता, रहता हरा-भरा,
 मुकुन्दका आश्रय एकमात्र है ।

युगान्तमें स्वीय करारविन्दसे,
 स-हर्ष लेंगे चरणारविन्दको,
 निवेश दे मंजु मुखारविन्दमें,
 शयान होते अरविन्द-नाभ हैं ।

चले उसी पादप ओर आप भी,
 त्रिलोकमें मंगल-गान हो उठा,
 विलोक आता अधिराज विश्वका
 हुए महाहर्षित वृक्ष-जीव भी ।

मराल बोले, झख भी सुखी हुए,
 कुरंगके वृन्द अभीत हो गये,
 प्रसूनकी राशि बिछी सुमार्गमें,
 हुई सपर्या-रत सर्वमेदिनी ।

वितान-सा था तरुका तना हुआ,
 विरे हुए थे वन अंतरिक्षमें,
 सरोजका सौरभ ले तडागसे
 चला महामंथर गंध-वाह भी ।

विरोधकी वृत्ति विहाय शाश्वती
 कुरंग, पंचास्य, वराह, व्याघ्र भी,
 खड़े हुए देख रहे स-मोद थे
 शकेश ज्योंही बटके तले चले ।

फणी उठाके फन नाचने लगा,
 कपोतने कूजन भोगपै किया,
 महीरुहोंपै कपि-संग खेलती
 प्रसन्न थी चंचल वृक्षशायिका ।

दुरन्त छोड़ा निज भक्ष्य श्येनने,
 दुरन्त आतापि निरामिषा हुई,
 अरण्यमें कोकिल कूजने लगे,
 कड़ा खर्गोका स्वर एक-साथ ही—

शिखरिणी

“ सदा सच्चे साथी सकल जगके एक तुम हो,
 तुम्हींको है, स्वामिन्, सुकर भव-उद्धार करना,
 तुम्हींने जीता है भव-भय तथा शोक, मद भी,
 करो रक्षा भूकी, स-पशु-खग-शाखी मनुजकी ।

“ धरा पापोंसे है अब दब रही घोर दुखसे,
 भरोसा है भारी निखिल नहिको, राज तुन हो,
 तुम्हारी इच्छा है सकल जन सद्गर्भ-रत हों,
 तमिला आई क्या जनन करने नव्य रविको ? ”

वचन्दतिलका

न्यग्रोधके निकट जाकर नाथ बैठे,
 थे ध्यानमें निरत संसृति-मुक्तिके वे,
 ऐसा मुहूर्त लख सिलि-पधावरोधी,
 जाया अन्तंग सैन लेकर स्वीप सेना ।

आलिंगिता वन गई तरुसे लताएँ,
 आनन्दमें लिपट सिन्धु गये तटीसे,
 कासारमें उमड़के सरसी समाई,
 संसारमें मदन-शासन हो रहा था ।

योगी-विरक्त-मुनि-मानस-क्षोभकारी,
 कंदर्प दर्प-युत हो उस काल आया,
 तूणीरसे विशिख एक जभी निकाला,
 आकृष्ट चाप करके विहँसा शिवारी ।

भ्रू-भंग-युक्त कर-चालन-शील वामा
 गाने लगीं मधुर गायन सौख्यकारी,
 हो मंत्र-मुग्ध रजनी रुक-सी गई यों;
 तारे, सुधा-किरण भी स्थित हो गये थे ।

था देख देख उनको यह भास होता
 श्री-स्तार-युक्त वस हास-विलास ही हैं,
 त्रैलोक्यका अमृत-सिन्धु भरा हुआ है
 सीमंतिनी-स-मद-नेत्र-कटाक्षमें ही ।

पीता न जो अधर-पल्लव कामिनीके,
 भ्रू-भंगिमा न लखता अति मोदसे जो,
 आशुल्क केश लख जो न स-काम होता,
 सो उक्त निर्वृषण, ह्रीं वृद्धाप ही है ।

नारी अनूप वृद्धमायुधकी प्रिया है,
 संपत्तिकी प्रणयिनी, सुभगा, सुनेत्रा,
 जो मूर्ख छोड़ इसको वनवात लेते,
 मुंडी, वृद्ध वन वे फिरते अकेले ।

शार्दूलविक्रीडित

बोले किन्तु, “ अये, महा छल-परे, तू भाग जा, भाग जा,
गोपाका मृदु वेष जो न धरती, होता महा अन्यथा,
हे हे काम स्वरूपिणी, स्थगित हो, तू जा यहाँसे अभी,
हा, दुर्बुद्धिमती, तुझे निरखके आती दया ही मुझे । ”

वंशस्थ

चला महावात, तमिस्र हो गया,
अहार्य डोले, हिल मेदिनी उठी,
पयोदने मूसलधार छोड़ दी,
स-घोष सौदामिनि दीप्त हो उठी ।

दुरन्त उल्का गिरने लगी तभी,
महान चीत्कार हुआ दिगन्तमें,
प्रकम्पमाना वन रोदसी गई,
अनी हुई प्रेरित प्रेत-लोककी ।

परन्तु सिद्धार्थ अ-कंप ही रहे,
डिगे न डोले, दृढ़ ही बने रहे,
महा अहिंसा-मय सत्य-धर्मका
सु-पाठ सारे जगको पढ़ा दिया ।

स-कंप बोधि-द्रुम भी हुआ नहीं,
न मूल छोड़ी उस नैश शान्तिने,
न पल्लवोंसे कण ओसके गिरे,
खड़ा रहा पादप विन्न-वातमें ।

घंटे सभी दृश्य बहिःप्रकारमे,
शकेशने या अनुभूत ही किये,
रहस्य तो केवल जानना बही
किया अनंगी जिसने अनंगको ।

लखी अनी संभ्रम-युक्त भागती
 प्रगाढ़ ध्यानस्थ शकेश हो गये,
 विचार देखी, गति जीव-जन्तुकी,
 तुरन्त पूर्वस्मृति हो गई उन्हें ।

तदा विलोका क्रम पूर्वजन्मका
 उन्हें हुआ ज्ञात रहस्य कर्मका,
 अतीत-नैमित्तिक वर्तमान है,
 भविष्य भी है फल भूत-वांजका ।

पुनः विलोका कित्त भौंति जीवके
 समस्त संस्कार अखंडनीय हैं,
 सदा इत्ती कारणसे नृ-लोकमें
 विधान होते बहु जन्म-जन्मके ।

तुरन्त ही आश्रय-ज्ञान हो गया,
 लखी सभी संस्थिति लोक-लोककी,
 अखंड ब्रह्मांड समंतभद्रको
 सुदृश्य, हस्तामलक-स्वरूप था ।

तदा विलोका निज दिव्य दृष्टिने
 अनन्य आदि-निशेरा स्वप्ने,
 वंदे हुए जो अमनस मनमें
 समस्त संवर्द्धित है अज्ञान में ।



शार्दूलविक्रीडित

पाई संलृतिने मनोजजितसे निर्वाणकी संपदा,
 प्राचीमें उदिता उपा-छवि हुई, फैली प्रभा भूनिपै,
 आया चासर दिव्य, सत्य-रविने मेढी मृषा चामिनी,
 मानों श्रीभगवानकी विजयकी थी घोषणा हो रही ।

रेखा जो धुंधली दिगन्तपर थी, सो रक्त होने लगी,
 दोषा थी तमसावृता गगनमें, सो भी अदृश्या हुई,
 हवा निध्रम शुक्र व्योम-तलमें, भूपै प्रभा छा गई,
 क्या ही पुण्य-प्रभात दिव्य-तलमें फैला महज्ज्योतिसे ।

पाई द्योति मेरुने प्रथम ही, माना स्वयंको हनी,
 शुभ्रा ज्योति-किरीट-मंडित-शिखा थी राजिती पूर्वमें;
 प्रातः वायु ब्रह्म सुगंध-युत हो, ले मन्दता दीव्य भी,
 फले पुष्प, उठे शिखीसुख, चले सानन्द गर्जार्द्र ।

जो दृढ़ादृश्ये पड़ी रजनिमें थी ओम मो भी हनी,
 फैली ज्योति प्रभातकी उत्कर्ष-आभा बनी राजिनी;
 हां हमाम अलापमान बलने थे तापों, हवा भी,
 ज्योतिर्मुक्त हुई शुभा महनरी, शिखीकी वदनी ।

यह निदेश सुना जन-मूयने
 चरणमें शरणागत हो गया,
 प्रभु गये सबको उपदेश दे
 निकट ही 'ऋषि-पत्तन'-ग्रामको ।

रजनि एक विता कर शान्तिसे
 नगरके नरको उपदेश दे,
 प्रभु यदा पहुँचे 'मृगदाव'में
 निरख धन्य हुए सब मांगधी ।

निकलते जब याचनके लिए
 विनयसे दुग हाथ पसारके,
 जिस गली चलेते मचता वही
 रख यही, " यह लो, यह लो, प्रभो । "

तनुज लेकर पुत्रवती चली;
 अग्नि लाल तथागत-पार्श्व
 चरणकी रज पाकर लगीं
 मुद्रित भी वह भौंकि मन्त्रमय ।

समय पावसका लखके, वहीं
ठहर जाय गये द्विज-संग ही,
निरखते उसके जप-यागको
निवसते वसु याम शकेश थे ।

द्विज वहाँपर आनय-शीतमें
निवसता, करता व्रत-योग था
जप तथा उपवास-निमग्न हो
यह तपोधन ध्यान-प्रसक्त था ।

गङ्गा समीप मुद्रा चुगते रहे,
उग्रनदौ किर्गी तन-आयिका,
द्विज अमंछ-मगाधि-निमग्न हो
न लज्जा बहिरंग कदापि था ।

द्विजमें, वह आनन्द योगमें,
जब घनी घनता बन शर-जग,
वह घनी निज आनन्द-निर्माण हो
न लज्जा बहिरंग कदापि था ।

समय पावसका लखके, वहाँ
 वहर जान गये द्विज-लिंग ही,
 निरखते उसके लज-यागको
 निरसते बहु जान कहैत ये ।

द्विज वहाँपर आत्म-धीतने
 निरसता, करता व्रत-योग था
 जब तथा उपवास-निमग्न हो
 वह तनोवन ध्यान-असक्त था ।

खग सनोर रुद्र जुगते रहे,
 जबनै निरखी तरह-शापिका,
 द्विज जनेद-समाधि-निमग्न हो
 न लखता बहिरंग कदापि था ।

द्विजने, बहु जातन धोरने,
 जब कभी बरता बर शव-सा,
 वह यती निज ध्यान-निर्माण हो
 न लखता खिजां बलि चंडता ।

कब गया दिन, यामिनि का गड़े,
 कब हुआ रव जन्तुक-पूयका,
 कब लगे तनै खग बोलने,
 वह यती इसने जानिहि था ।

रजदिने निकटे वन-जगु नों
 बिबर नैख-नाद करे वहाँ,
 तिमिर-भूरी यथा नरने ईशे
 खल-भारिक भूरी बड़ोके हो ।

मनसः शान्तमयः मनसो, वही
 तब आनन्द गंध त्रिज-रंग ही,
 निम्नमे लसके अर-यागको
 निवसते वहु आनन्द शक्यो ये ।

त्रिज बहोकर आनन्द-दीप्तमें
 निवसता, करता व्रत-योग था
 जप तथा उपवास-निमग्न हो
 वह तपोधन ध्यान-प्रसक्त था ।

खग समीप मुद्रा चुगते रहे,
 जघनपै फिरती तरु-शापिका,
 द्विज अभेय-सन्नाधि-निमग्न हो
 न लखता बहिरंग कदापि था ।

दिवसमें, बहु आतप घोरमें,
 जब कभी बनता बन दाव-स्ता,
 वह यती निज ध्यान-निलीन हो
 न लखता रविकी अति चंडता ।

कब गया दिन, चानिनि आ गई,
 कब हुआ रव जन्तुक-यूयका,
 कब लगे तरुपै खग झोलने,
 वह यती इतसे अनभिज्ञ था ।

रजनिमें निकलें वन-जन्तु भी
 विचर भैरव-नाद करें वही,
 तिनिर-पूर्ण यथा ननने धँसे
 खल-मलादिक पूर्ण अशंक हो ।

मनम पावनका लम्बकै, बहो
 छतर आप गये द्विज-संग ही,
 निगनते उसके जप-यागको
 निवसते वसु याम शकेश थे ।

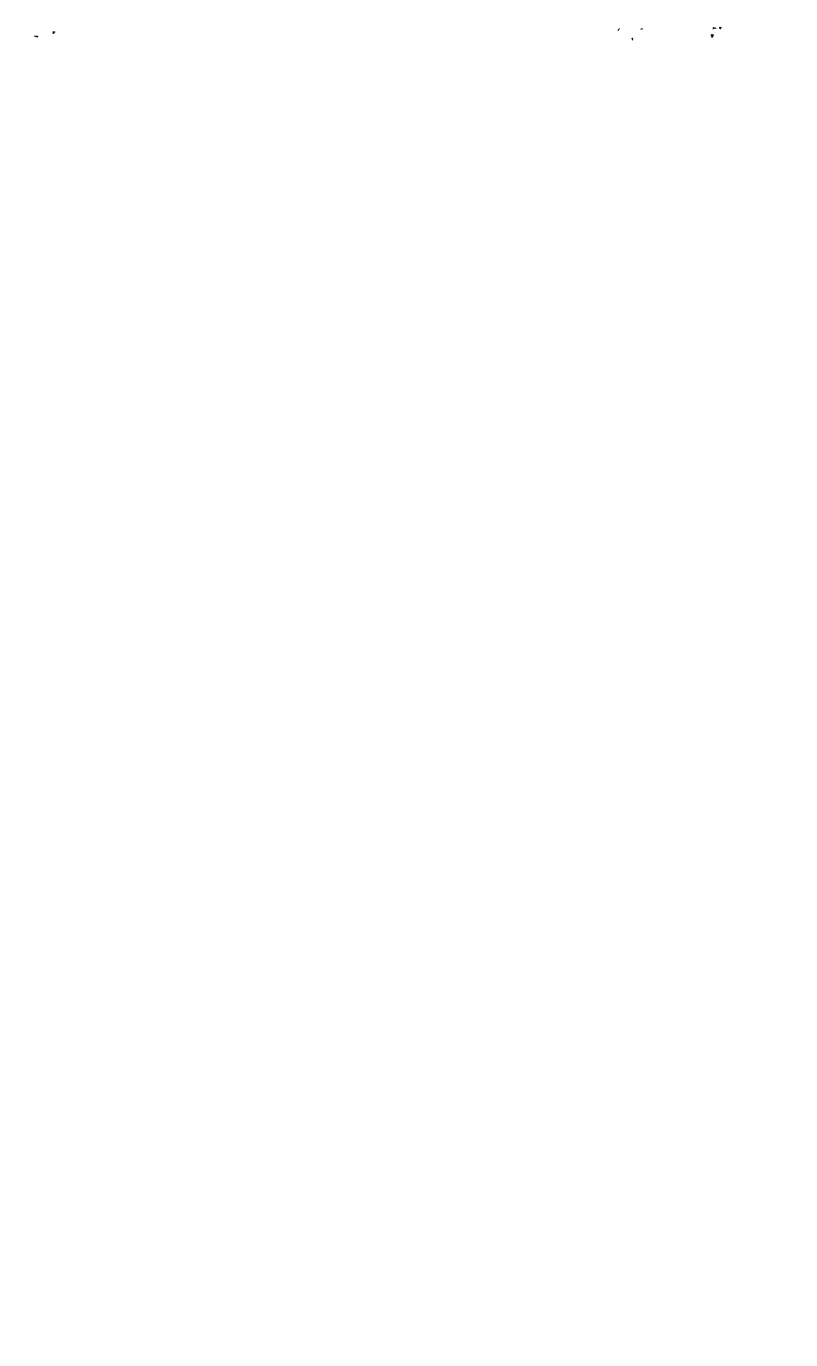
द्विज बहोपर आतप-शीतमें
 निवसता, करता व्रत-योग था
 जप तथा उपवास-निमग्न हो
 वह तपोधन ध्यान-प्रसक्त था ।

खग समीप मुदा चुगते रहे,
 जघनपै फिरती तरु-शायिका,
 द्विज अभेद्य-समाधि-निमग्न हो
 न लखता बहिरंग कदापि था ।

दिवसमें, बहु आतप घोरमें,
 जब कभी बनता बन दाव-सा,
 वह यती निज ध्यान-निलीन हो
 न लखता रविकी अति चंडता ।

कब गया दिन, यामिनि आ गई,
 कब हुआ रव जम्बुक-यूथका,
 कब लगे तरुपै खग बोलने,
 वह यती इससे अनभिज्ञ था ।

रजनिमें निकलें वन-जन्तु भी
 विचर भैरव-नाद करें वहाँ,
 तिमिर-पूर्ण यथा मनमें धँसें
 खल-मलादिक पूर्ण अशंक हो ।



“ गमय पाकर कर्म-विपाकर्म
 गुण्यद्रव्यादिक भी मिटने सभी,
 कथित है निगमागममें यही,
 सुख, मुक्ति सदा अविनाशिनी ।

“ पर, तजो निगमागमकी कथा,
 द्विज, निसर्ग लखो यह सामने,
 यह न केवल है उपभोग्य ही
 अति सुधी उपदेशक भी यही ।

“ निराखिए, यह पुष्प प्रसन्न हैं,
 भ्रमर हैं इनपै मँड़रा रहे,
 अरुणके पद छूकर जागते
 मुदित सो रहते लख यामिनी ।

“ भ्रमरको मकरन्द, दिगन्तको
 सुरभि देकर हैं यश छूटते,
 स-मुद हैं चढ़ते हरि-शीसपै
 पर प्रसून न भौंह सिकोड़ते ।

“ यह लखो वनमें तरु तालके
 अति विशाल समुन्नत-भाल हैं,
 पवनका मद पीकर व्योममें
 स-मुद हैं सुख-संयुत झूमते ।

“ यह सभी तरु-गुल्म-लता, सखे,
 परम तुष्ट बने तन-पुष्ट हैं,
 यह विनोदमयी तरु-जीवनी
 वन रही किस हेतु प्रहेलिका ?

शयन विप्र कभी करता न था,
 यदि कभी करता, क्षण एक ही,
 अरुणके पहले वह जागता
 अति कठोर रही तप-साधना ।

निरख तापसकी तप-योजना,
 विपथ देख उसे श्रुति-मार्गसे,
 लख महा व्यभिचार विवेकका
 निगम-पालकसे न रहा गया ।

वचन बोल उठे प्रभु विप्रसे—
 “तुम सखे, यह क्यों दुख झेलते ?
 जब न है लघु जीवन-क्लेश ही
 स्व-तन क्यों करते फिर दग्ध हो ?

“निगमका पथ, आगम-मार्ग भी,
 कठिन है अति, मैं यह मानता,
 पर लखो यह देह मनुष्यकी
 प्रमुख साधन है सत्र धर्मका ।

“यदि कहींपर स्वर्ग-निकेत है,
 इतर है जनके तनसे नहीं,
 यदि उसे तुम भोग सको, सखे,
 निकट तो फिर मुक्ति अवश्य है ।

“निगम हैं कहते सुख स्वर्ग है,
 नरक दुःख यही मत शास्त्रका,
 क्रम परन्तु सदा सुख-दुःखका
 न रुकता, चलता रहता, सखे,

“ समस्त राजा नर-विजयन
 सुखदुःख-मोक्ष भी मिटाने सभी,
 कथित है निगमागमों की,
 मुहूर्त, मुक्ति सब अविनाशिन ।

“ पर, तजो निगमागमों का,
 द्विज, निसर्ग लखो यह सामने,
 यह न केवल है उपभोग ही
 अति सुधी उपदेशक भी यही ।

“ निराश्रित, यह पुष्प प्रसन्न है,
 अमर है इनपै नैरा रहे,
 अरण्यके पद छूकर जागते
 मुदित तो रहते लख पानिनी ।

“ अमरको नकरन्द, दिगन्तको
 सुरभि देकर है यज्ञ दृष्टते,
 सन्तुष्ट है चढ़ने हरि-शोसपै
 पर प्रमत्त न भौह भ्रिकोड़ने ।

“ यह कबो कर्मों का नश्वर,
 अने विद्वान् सत्कर्म-भक्त हैं,
 स्वयंका सब देखे व्योमने
 सन्तुष्ट है सुख-संतुष्ट कर्मने ।

“ यह सभी नर-मुक्त-जन, माते,
 परम सुख देने नर-मुक्त हैं,
 यह विनेश्वरों का नर-शोभन
 सब सबों विना वेन शोभिका ।

“ विहग जो उनपै कल कूजते
 वह कभी निजको न विनाशते,
 निरखिए, अति मंजु प्रभातमें
 परम मुग्ध स-हास निसर्ग है ।

“ दुरित-दग्ध मनुष्य-समाजके
 यह सभी उपदेशक हैं, सखे,
 यजन-याजन एक यही यहाँ
 प्रकृति-पाठ तपोधन जो पढ़ें ।

“ द्विज पुनीत महामति आप हैं,
 यदि कहीं जग-संग्रह-भाव हो,
 मनुज-वृन्द गहें पथ धर्मका,
 सकल संसृति मुक्ति-निधान हो ।

“ विदित शिक्षक आप त्रिवर्गके
 मनुज कौन तुम्हें फिर ज्ञान दे,
 इस लिए यह ग्रन्थ निसर्गका
 प्रकट है, कृपया पढ़ लीजिए ।

शार्दूलविक्रीडित

“ पार्वे ब्राह्मण बुद्धि सत्य-तपसे रक्षा करें जातिकी,
 सीखें पाठ सनातनी प्रकृतिसे त्यागें मृषा साधना,
 सारे भूतलमें चरित्र-व्रतसे जो अग्रगामी बनें,
 तो हिंसा मिट जाय एक क्षणमें निर्वाण-संसिद्धि हो ।”

बंगरय

उसी घड़ी देस पड़ी दिगन्तमें
 बनान्तसे उथित धूमकी ध्वजा,
 अनिएका आगम जानके उसे
 सन्तर्क सारे खग-वृन्द हो गये ।

पुनः हुआ शब्द सुदूर प्रान्तमें
 महान अस्पष्ट परन्तु भीम जो,
 विपत्तिका अग्रग मानके उसे
 सन्तर्क सारे पशु-वृन्द हो गये ।

प्रचंड दायानल क्या अरण्यमें
 लगा हुआ है, यह तर्क हो उठा;
 कि युद्ध छेड़ा वनके समीप ही
 अरातिसे राजगृहाधिराजने !

विलोकनेको वह भीम धूमिका
 चले यती साथ शकाधिनाथके,
 समीपमें जाकर जो लखा उसे
 स-वत्स मेघ-व्रज नीयमान था ।

पुनः पुनः आजकको हँकारता,
 चला अजा-जीव स-वेग जा रहा,
 सनूहको ले वह छाग-मेघके
 चला वहीं काननके समीपसे ।

बटोरता छाग, उरभ्र हाँकता,
 खदेड़ता दंड-प्रहारसे अजा,
 महान प्रार्माण कुशब्द बोलता
 चला अजापाल उसी घड़ी वहाँ ।

विलोक छागी युग-शाव-संयुता,
 विपन्न थी जो निज-पुत्र-व्याधिसे
 तुरन्त आगे बढ़के लखा, अहो !
 शकेशने आजक-मेष-पुंजमें ।

प्रहारसे शावक पंगु हो रहा,
 गिरा रहा शोणित एक पाँवसे,
 स-दुःख धीमी गतिसे अधीर हो
 अजाज पीछे छुटता हुआ चला ।

स्व-पुत्रको ताड़ित दंड-घातसे
 विलोक होती जननी अधीर थी,
 अभीत पीछे रहना असाध्य था,
 प्रसह्य आगे बढ़ना अशक्य था ।

विलोकते ही प्रभुने अधीर हो
 उठा लिया शावक शीघ्र अंकमें,
 उसे लगाके निज कंठमें तदा
 कहा, “ सुने तू अयि, मंजु ऊर्णदे,

“ चले जहाँ तू शिशु ले चलूँ वहीं,
 न भीत हो देख मदीय कर्म तू,
 सदैव मेरा प्रिय कार्य है कि मैं
 हरा करूँ संकट जीव-जन्तुके । ”

शकेश आगे बढ़ छाग-पालसे
 स-प्रेम यों सत्वर पृष्ठने लगे,
 “ सखे, कहाँको तुम जा रहे अभी
 प्रचंड है आतप, तप्त भूमि है । ”

निराश्रिता होकर दीन कामिनी
 हताश ज्यों ही वह दूबने चली,
 तभी नदीके तटमें सुयोगसे
 अनाथके नाथ शकेशको लखा ।

विलोकते ही प्रभुको अनाथिनी
 पछाड़ खाके गिर भूमिपै पड़ी,
 अपत्यका तो शव दारु-खंड-सा
 गिरा अहो ! श्रीचरणारविन्दपै ।

अपत्य ज्यों ही पद-पद्मपै गिरा
 तुरन्त संचेष्टित-गात्र हो उठा,
 शकेशको देख हँसा सचेत हो,
 विलोक माता-मुख रो पड़ा तदा ।

अपत्यको जीवित देख प्राण ले
 गिरी पदोंपै विधवा शकेशके,
 सुवृत्त सारा पुरमें फिरा तभी
 विलोकनेको जनता चली सभी ।

स-हर्ष संजीवन-कार्य देखके
 दिनेश अस्ताचल-धामको चले,
 शकेश भी आजक-पाल-संगमें
 चले मुदा राजगृहाख्य ग्रामको ।

स राग हो अंतिम-रश्मि सूर्य भी
 लगा छिपाने निजको दिगन्तमें,
 प्रगाढ़ छाया प्रति-धामपै पड़ी
 स्व-गेह प्रत्यागत गोप भी हुए ।

सज्जन देखा नर पौन-दृग्ने
 हरे लगने पथमे शकेशके,
 प्रविष्ट ज्यों ही बा सामने हुए
 शिंहन बोले, विहसे प्रदीप भी ।

तुरन्त रोका घन लौहकारने,
 रुके सभी बाद-विवाद पण्यके,
 बिली हुई थी पथ-मध्य वस्तुएँ
 सभी हट्टा ली त पण्य-पौरने ।

बने यहाँ निष्क्रिय तन्तुवाय, तो
 हुए वहाँ लेखक त्यक्त-लेखनी,
 शकेशको देख प्रसन्न नारियाँ
 स-तर्क-सी होकर पूछने लगीं—

“ कहो, सखी, सज्जन कौन जा रहे,
 लिये हुए हैं बलि-छाग अंकमें,
 अनंगको सांग बना रही लखो
 मनोरमा कान्ति मुखारविन्दकी ।

“ लखो इन्हें, सुन्दर अंग-अंग हैं,
 प्रसन्न हैं, कोमल हैं, स-तेज हैं,
 प्रफुल्ल हैं लोचन पुंडरीक-से,
 शशांक-सा आनन कान्ति-पूर्ण है ।

“ विस्तार-से, खंजन-से, कुरंग-से,
 सरोज-से, लोचन पा गये कहाँ ?
 विलोकिए तो इनकी तन-प्रभा,
 अनंग आया वनके सितांग ज्यों । ”

मन्त्रान देना नर पैय-कुन्दने
 हट्टे मगमे प्रथमे जलेंगले,
 प्रविष्ट ज्यों ही वह मगमे हट्ट,
 विहंग बोले, विहंगे प्रवीर भी ।

तुरन्त रोका वन लौहकारने,
 लके सभी बाढ़-विवाद कपके,
 विहंगे हई थी पथ-नय वस्तुएं,
 सभी हटा ली त पण-पौरने ।

वने यहाँ निश्चित तनुवाय, तो
 हुए वहाँ लेखक त्यक्त-लेखनी,
 शकेशको देख प्रसन्न नारियाँ
 स-तर्क-सी होकर पूछने लगीं—

“ कहो, सखी, सज्जन कौन जा रहे,
 लिये हुए हैं बलि-छाग अंकने,
 अनंगको सांग बना रही लखो
 मनोरमा कान्ति मुखारविन्दकी ।

“ लखो इन्हें, सुन्दर अंग-अंग हैं,
 प्रसन्न हैं, कोनल हैं, स-तेज हैं,
 प्रफुल्ल हैं लोचन पुंडरीक-से,
 शशांक-सा आनन कान्ति-पूर्ण है ।

“ वितार-से, खंजन-से, कुरंग-से,
 सरोज-से, लोचन पा गये कहाँ ?
 विलोकिए तो इनकी तन-प्रभा,
 अनंग आया वनके सितांग ज्यों । ”



“ अशक्तके ही सम शक्तपै, सखे,
जमा सदासे जिसका प्रभाव है,
वही दया संसृति-मोक्ष-दायिनी
प्रसिद्ध है, सिद्ध करो न अन्यथा ।

“ अशक्तके ही प्रति शक्तका दया
महान कल्याणकारी विभूति है,
बना रही है कुछ कोमला यही
महान घोरा गति जीव-लोककी ।

“ दया विराजे यदि, भूप, चित्तमें
तुरन्त निःश्रेयस-सिद्धि प्राप्त हो,
कहा गया ईश्वर विद्भमें वही
महादयासागर-नामधेय जो ।

“ महान वैषम्य विलोकिए, सखे,
मनुष्य हो निर्दय चाहते दया,
न जानते है सब जीव विद्भके
विहार-निद्रा-भयमें समान हैं ।

“ मनुष्यकी भाँति समस्त जीव भी
फँसे हुए हैं दृढ़ कर्म-जालमें,
रहस्य-पूर्णा त्रिनिगूढ़-अर्थिनी
यथैव है मृत्यु, तथैव जन्म भी ।

“ न भोग हैं त्याज्य, न कर्म हेय है,
विज्ञेय निःश्रेयस है न घातसे,
न जीव है वय्य, न मृत्यु श्रेय है,
न प्रेय हिंसा, न विधेय पाप है ।

.

, , ,

, .



“ मृणालिनी मंजु राशुन-पादपा
चतुर्दिशा है मगना धिरी छेई,
कन्तु तेरा लख रूप-रंग रां
स-दृष्ट देती रबिको बधाइयां ।

“ परन्तु तेरा छवि देग-देग में
हुई बिजला दृग-भार-नाहिनी,
मिली कहाँसे किस पुण्यसे तुझे
अनुर सिद्धार्थ-विद्योचनोपमा !

“ अलल तेरा दुग-ज्योप क्यों, प्रिये !
म-सोपका कारण तो नता सुने,
बिकार व्यापक तुझमें शिने-पका,
दिनार अया अया निने-पका ।

“ मृणादिनीं मंडु सुवृत्त-पल्लवा
चतुर्विंश है सवना विरां हुई,
अनूप तेरा ठग रूप-रंग सो
सन्दर्भ देता रविको बधाइयो ।

“ परन्तु तेरी छवि देख-देख मैं
हुई विपत्ता दुख-भार-बाहिनां,
मिथ्या कह्यो किन्तु सुखसे हूँ
अनुर सिद्धार्थ-विशेषनाम्ना !

“ अलख, तेरा दृग-ज्योति क्यो, प्रिये !
रूप-रंग-रस-रस-रस सो क्या हूँ,
विद्या-व्यापार हूँ तो निन्द्यका,
विद्या-आप-आप-निन्द्यका ।

177

“ प्रभाव हैं अश्रु मुद्रातिरेकके,
 महान पीडा-कल एक मृत्यु ही,
 परन्तु आशा सहगामिनी बनी
 चला रही है इस मौतिसे मुझे । ”

शार्दूलविक्रीडित

आशा विश्व-विभासिनी, रंगमयी आदित्यकी रश्मि है,
 संसारोदधिकी सुसुष्ट तरंगी, कलौष्य-संचरिणी ।
 ऐसी एक अलाप जो न अलग देवी-मुनी ही गई,
 गोसावे, कल-कंदमे निजक दो गुंजर-सुता हुई ।

“ यदि न जा, रम न मकरन्दमे,
पर व्यथा सुन ले कुछ व्यामसे,
अति, नदीय समझ गिरीज त,
स्थल न है अनुमान-प्रमाणका ।

“ कमल-केसरकी वह पंक्तिमा
महदा है मन पीत इरीरके,
पर यहाँ अति सुन्दर नदना,
जनि यहाँ विष्णु मन गजकरी ।



न मैं बनूँगी प्रिय-प्राप्ति-वाधिका ।

“ अतः चली जा सुनती हुई कथा,
दयामयी तू अति-सौख्य-दायिनी,
बनी रहूँगी कब लौं, मुझे बता,
शकेश-प्रत्यागम-दत्त-मानसा ?

“ न प्यार आता उनको मदीय है ?
न धाम प्यारा अब क्यों रहा उन्हें ?
शकेशके स्वागतमें बृथा, सखी,
बिछा रही हूँ निज नेत्र-पाँवड़े । ”

“ बना चुकी मानस शिक्थ-तुल्य मैं,
शकेश होते फिर वज्र-तुल्य क्यों ?
स्वकीय सन्मूर्ति-समेत चित्तकी
गुरा चले चेतनता, कहाँ गये ?

“ अहर्निशा एक शकेशके बिना

“ सजे हुए साज-सिँगार आज तू
 कहाँ, नदी, वल्लभ-भेंटने चली,
 न है समीचीन कु-प्रश्न पूछना,
 न मैं बनूँगी प्रिय-प्राप्ति-वाधिका ।

“ अतः चली जा सुनती हुई कथा,
 दयामयी तू अति-सौख्य-दायिनी,
 बनी रहूँगी कव लौं, मुझे बता,
 शकेश-प्रत्यागम-दत्त-मानसा ?

“ न ध्यान आता उनको मदीय है ?
 न धाम प्यारा अब क्यों रहा उन्हें ?
 शकेशके स्वागतमें वृथा, सखी,
 बिछा रही हूँ निज नेत्र-पाँवड़े । ”

“ बना चुकी मानस शिक्थ-तुल्य मैं,
 शकेश होते फिर वज्र-तुल्य क्यों ?
 स्वकीय सन्मूर्ति-समेत चित्तकी
 चुरा चले चेतनता, कहाँ गये ?

“ अहर्निशा एक शकेशके बिना
 व्यतीत होता युग-तुल्य याम था,
 अजस्र थी मैं उनको विलोकती
 न देखते वे मम ओर आज हैं । ”

विलोचनोंमें उनकी सु-मूर्ति है,
 मरा उन्हींका अनुराग चित्तमें,
 परन्तु तो भी दृगको रुला चले,
 विमोह-प्याला मनको पिला चले ।

-

-

-

“ वाणीसे तू रहित खग है, क्या कहेगा-सुनेगा,
ले जा मेरी लिखित दुखकी पत्रिका चोंचमें ही;
जाके मेरे दयित-पदपै डालना नम्रतासे,
श्रीमानोंसे विनय करना धर्म है आश्रितोंका ।

“ तू प्यारा था मम दयितको ध्यान होगा तुझे भी,
नाराचोंसे व्यथित तुझको नाथने ही बचाया,
तेरा ज्ञाता अब न मुझको ज्ञाण देता, सखे हे,
झूलोंसे भी मृदुल मनके वज्र-से क्रूर होते ।

“ तू प्यारा था हृदय-धनको, वे मुझे चाहते थे,
संबंधी तू खग इसलिए मित्र मेरा पुराना;
प्यारे पक्षी, मम हित सधे, पत्रिका ले वहाँ जा,
भद्रोंके ही चरण रचते क्षेम हैं मेदिनीमें ।

“ मोती खाके सुहृद जब तू बोलता वर्णमाला
शुभ्रा धारा-सदृश कढ़ती शोभना मंजुवाणी,
श्रोताओका हसित उमकी शुभ्रताको बढ़ाता,
गौगंगोंका मकड़ जगमे व्यापि ढाई गई है ।

“ इ सो प्राणी बिलग करता क्षीरको नारको जो,
तेरी वाणी अनृत-रहिता, युक्त है मय्यनामे,
देवै कैसं मन प्रिय नहीं मानने बात तेरी,
भद्रा होनी अविचल नदा नायकानी जनोंने ।

“ जाते जाते निपुल सरिता मार्गमें आ मिलेगी,
 होंगे पक्षी स-मुद कितने खेलते निर्झरोंमें,
 सीधे जाना, विरम रहना तू वहाँपै न प्यारे,
 ज्ञानी सारे विषय तजके ध्येय ही चाहते हैं ।

“ उग्यो ही ऊँचा उठकर, सखे, व्योममें जा उड़ेगा,
 देयेगा तू प्रतनु कुटिला रोहिणी मेखला-सी,
 शोभाशाली निरख छबिको लौट आना न, प्यारे,
 वीरोंको है उचित मरना, पाँव पीछे न देना ।

“ हंगोन्की भी अवलि तुझको जो मिले रोदगीमें,
 तो तू, पक्षी, न रग रहना व्यर्थ पंचायतोंमें,
 सीधे जाना, मुक्त करना, शीघ्र देना मंदेगा,
 म काग्योंमें, निहम, बहृधा भिन्न आने पने हैं ।

“ यों ही, मेरे खग, निरखना चारुता वारिदोंकी,
जीमूतोंसे विलग रहना दूर ही दूर जाना,
जो जावेगा निकट उनके क्रींच-सा ज्ञात होगा,
होते प्रांयः भ्रमित लखके शुद्ध सादृश्य प्राणी ।

“ प्यारे, भूके निकट इतना आ न जाना कभी तू,
जो वाणोंसे वधिकगणके विद्ध हों पक्ष तेरे,
ऊँचे-नीचे, खग, न उड़ना, व्योमके मध्य जाना,
श्रेया भूमें सकल जनको मध्यमा वृत्ति ही है ।

“ मोती तेरे धवल गलमें बाँध दूँ पोटलीमें,
इच्छा हो तो स-मुद चुगना, साथ पाथेय ले जा,
पानी पीना पर न रुकके, नाथ देखे न जौ लौं,
सद्यः देता फल व्रत वही निर्जलीभूत जो हो ।

“ कासारोंपै, गहन तरुपै, जो रुके हृदिनीपै,
तो तू थोड़ा विरम वनिताको, सखे, शान्ति देना,
जायाको ले गमन करना छोड़ देना न यों ही,
स्वामीको है अनुचित महा त्यागना आश्रितोंको ।

“ जो तू देखे लुहद, सरते मार्गमें निर्झरोंको,
तो आँखोंमें त्वरित उनका चित्र भी खींच लेना,
आगे जाके मन दयितके आँसुओंको गिराना,
दाक्ष्योंसे क्या ! यदि न वनता कार्य हो इंगितोंसे ।

“ जो वृक्षोंपै विहग अपने कोटरोंमें बसे हों,
शिक्षा देना निकल कण ला शावकोंको खिलावें,
यों ही माता-तनुज-सुख है विघ्नमें वृद्धि पाता,
देखी जाती अमित महिमा स्नेहकी सर्वदा है ।

“ जाना, प्यारे, न उपवनमें युक्त आमोदसे जो,
 किजल्कोंमें भ्रमर रमते हों जहाँ मत्ततासे,
 उन्मत्तोंका जमघट कहीं, वन्धु, होता नहीं है,
 दो खड्गोंको गृह न मिलना एक ही कोपमें है ।

“ कुंजोंमें, हे बिहगवर, तू स्वप्नमें भी न जाना,
 वे प्राणीको व्यथित करते मारके शायकोंसे,
 मेरा प्याग रति तज तथा कामको छोड़ भागा,
 हृन्दासीता प्रकृति जनकी कामना-हीन होती ।

“ उषानोमें नवय अञ्जलि झुकी हों जहाँसे,
 छोने ऐसे स्थलपर नहीं प्राणज्यों हनने,
 छोने बाधा वह न जिनके संगमें मेलिया हों,
 एकाकी ही भ्रमण करने 'एक' को रोचने हों ।

पयोद-रेखा सित-पीत-रक्तिमा
 स-भंगिमा पश्चिमके ललाटपै
 दिगन्तमें जाग्रत स्वप्न-सी बन्दी,
 लसी क्षपा-नाटक-रंगभूमिमें ।

दिनान्तमें पंकज वन्द हो चले,
 मिलिन्द बन्दी कल कोरमें हुए,
 बलाक तौरस्थ-अरण्य-वृक्षों
 विद्रोकोत्ते थे शुभ स्वप्न भनिके ।

सर्गार भी वानन-प्रान्तसे चला,
 सुगन्ध फैली रजनी-प्रकाश-की,
 प्रसन्न हो सुन्दर मन्द हो चली
 तरंग सोने सर-नीम-अंकमें ।

प्रशान्त है व्योम, सर्गार शान्त है,
 निशान्त दिगन्त-तरी शान्त है,

पयोद-रेखा सित-पात-रक्तिमा
 स-भंगिमा पश्चिमके ललाटपै
 दिगन्तमें जाग्रत स्वप्न-सी बनी,
 लसी क्षपा-नाटक-रंगभूमिमें ।

दिनान्तमें पंकज बन्द हो चले,
 मिलिन्द बन्दी कल कोयमें हुए,
 बलाक तीरस्थ-अरण्य-वृक्षों
 विलोकते थे शुभ स्वप्न मीनके ।

सर्मार भी कानन-प्राप्तसे चला,
 सुगन्ध फैली गङ्गी-प्रकाशकी,
 प्रसन्न हो सखर मन्द हाँ चली
 तरंग सोने सूर-नील-अंशुमें ।

“ प्रकाशसे मंडित नम्र मुंड है,
प्रदीप्त है कान्ति मुखारविन्दपै,
ललाट तेजोमय शान्ति-युक्त है,
सन्ताप हैं लोचन देव-देवके ।

“ यथा यथा वे फिर चक्र-वात-से
मुद्रा मुनाते उपदेश लोकको,
तथा तथा मानव शुष्क पर्जसे
बने शकेशानुविदेयशील हैं ।

“ दिविष्ट-कान्तार अथार पूत भी
न क्षीरिका याननके समान हैं;
जहाँ महाधर्म-नहरय-नक्षत्र
अभी समासीन त्रिलोक-नाथ हैं । ”

निमेषमें ही अनिमेष हो गये,
 खड़े रहे चित्रित चित्र-लेखसे,
 सुनी जमी व्याहति बुद्धदेवकी
 रही नहीं चंचल वृत्ति चित्तकी ।

दयामयी, क्षान्तिमयी, सुधामयी,
 महा पवित्रा गुरु ज्ञान-दायिनी,
 हुए सभी नरक, अहो ! यदा सुनी
 प्रसन्न-गंभीर-गिरा शकेशकी ।

द्विरेक जैसे निज गेहको नज
 चले, पहुँचे, मरि-नील सुख ही,
 परागका पान को प्रज्वाल जो
 महान-आनन्द-निमग्न-विन हो :

निर्वाण हो यो महासुख-प्राप्तों,
 लगे न से साधन से न-दोष की,
 प्रमोदमें भूत-सर्वदा के ही
 साधन-साधन, विन न साधन की ।

“सदैव स्वर्गादिपि जो गरीयसी,
त्रिलोककी संपत्तिसे महीयसी,
चरिष्ठ है आदर जन्म-धामका,
गरिष्ठ है गौरव नाट-भूमिका ।

“नृदेव ही हैं जननी तथा पिता,
न पुत्र चूकें निज धर्ममें कमी,
उपासनासे उनकी मनुष्यको
अवश्य निःश्रेयस-प्राप्ति शक्य है ।

“स्व-धर्म-निष्ठा जिसमें अखंड हो
निदिष्ट-निर्वाण-निवेश है यही,
अवश्य ही पातक-पुंज-नाशमें
प्रवेश पाना नर पुण्य-भागमें ।

“विस्मय, दाडिपत्र, दया, उदारता
समेत जो जीवनमें बिना हों,
विलिखनीया जगत्की सुखी है
प्रशंसनीया जगत्की सुखी है ।

मुदित पौर-संभी रचने लगे
 भवन-द्वार अपार उमंगमें,
 सज उठे प्रिय-दर्शन मार्गमें
 सुगत-स्वागत-साज-समाज भी ।

तन गया पुर-दक्षिण-द्वारपै
 परम चित्र-विचित्र वितान भी,
 अवलियाँ गुण-विद्ध प्रसूनकी
 विलसतीं जिनमें अति मंजु थीं ।

स-घट-मंगल-द्रव्य-वितानमें
 विशद वंदनवार सजे गये,
 परम दिव्य सिंहासन भी लगा
 नृपति-नंदनके अभिषेकको ।

प्रचुर पातित पावन नीरसे
 नगरके पथ पंकिल हो गये,
 स-दल मंजरियाँ सहकारकी
 वसन-मंडप-मंडनशील थीं ।

लसित तोरणपै पवमानसे
 फहरता हरता मन केतु था,
 वसनमें जिसके विरचा गया
 सहित-स्वर्ण-वरंडक पुष्करी ।

बज रहे बहु डिंडिम झाल थे,
 मुमुखियाँ करतीं कल गान थीं,
 जन खड़े पुर-दक्षिण-द्वारपै
 नृपति-नंदन-स्वागतमें सभी ।

परम-हर्षित-चित्त यशोधरा
चढ़ चली शिविकापर पुत्र ले,
नगर-बाहर जाकर सुन्दरी
रुक गई पति-स्वागतके लिए ।

नगरके नर-नारि प्रमोदमें
सब समूह हुए पुर-झरपै
जन अनेक चढ़े तरु-शृंगपै
निरखते पथ थे शकनायका ।

सुगत-स्वागत-आनंद-सिन्धुमें
सब निमग्न हुए नर-नारि यों,
सुगठ दर्शनको शक-चन्द्रके
उमड़ते मगधे, हठयात्रि थे ।

पथिक जो बदनाम सम भाग्यमें
परिमलमय गली या धूलमें —
“सर्पिः, गजः, कर्पूरः, कर्पूरः”
गुण-गुणः, गुण-गुणः, गुण-गुणः

वंशस्थ

सुना जमी भूपतिने कि द्वारपै
 खड़े हुए राजकुमार भिक्षु-से,
 हुए महाशुब्ध प्रकोप-युक्त वे,
 तुरन्त वासन्त्य विलीन हो गया ।

न साथ है भूपतिका दरिद्रका,
 न साम्य नीलाम्बरका कणायका,
 किरीटके योग्य न नग्न मुंड है,
 प्रभुत्वका प्रेम न निर्धनत्वसे ।

उठे जरा-क्षत स्व-गुंन पैरने,
 स-सौध उर्वीपति दौन पामने,
 समस्त सामन्त-समेत गंछने
 तुरन्त ही कंधिन-ओढ़ हो जाते ।

१८—निर्वाण

शार्दूलविक्रीडित

काशीसे वृष-यानसे यदि कभी ईशानको जाइए,
आगे है शुभ सारनाथ-महि जो है पुण्यशीला महा;
यों ही जाकर पाँच-सात दिनमें आती वही मेदिनी,
लोगोंसे बहुधा हिमाद्रि-हिम भी देखा जहाँसे गया ।

फलोंसे फलसे लदे झुक रहे हैं मंजु शाखी जहाँ,
शोभासे परिपूर्ण हैं अति घनी आरामकी राजियाँ;
वृक्षोंकी पड़ती जहाँ सुरभिता छाया मनोमोहिनी,
जाते ही नर-चित्त-वृत्ति लहती स्वर्गीय आनन्द है ।

काले प्रस्तरपै जहाँ जम रहे प्राचीन कल्पीक हैं,
अस्वत्थादि अनेक दीर्घ तरुकी हैं श्रेणियों शोभना,
संख्याको जब मन्द मन्द बहता आराममें दागु है,
होती है तपि-नाशि भूमि-तलबारी संवत् आनन्दसे ।

वैठे श्रीभगवान, और जनता वैठी उन्हें घेरके,
आई थी सुनने स-हर्ष सुखदा डेया गिरा मुक्तिदा,
देती सन्मति जो सदा कुमतिको, निर्वृत्ति उद्विग्नको,
विख्याता भव-पाशको विकट जो है खंड-धारा-समा ।

वैठे श्रीभगवानके निकट ही राजा महामोदसे,
चारों ओर प्रसिद्ध शाक्य कुलके सामन्त आसीन थे,
आये थे प्रिय देवदत्त संगमें आनन्द शारेय भी,
कैसी ज्ञान-प्रधान शाक्यमुनिकी सिद्धास्पदा थी सभा ।

चारों ओर इतस्ततः निरखता सारंगके शाव-सा,
बेटा राहुल पासमें जनकके था चैलको खींचता;
गोपा श्रीभगवानके चरणमें वैठी महामोदसे
पीड़ाएँ जितकी वियोग-जनिता सारी व्यतीता हुई ।

कैसा प्रेम विशुद्ध बुद्ध-प्रति था, स्वर्गीय आनन्द था,
भोगा जा सकता कभी अवनिमें जो इन्द्रियोंसे नहीं,
आया जीवन ताप-तम तनमें, तृष्णा मिटी भौतिकी,
गोपा तो अब सत्य ही सुगतकी अर्धांगिनी हो गई ।

जायाको अब नव्य-जीवनमयी संजीविनी-सी मिली,
देती शाश्वत आयु जो, न जिससे आती कभी वृद्धता,
देती अविनाशिक देव जिसको आती नहीं मृत्यु ही

आये जो सुनने त्रिलोकपतिकी वाणी महा मोक्षदा,
 संख्या थी उनकी अनन्त, गणानातीता महाशेषसे,
 थे प्रात्यक्ष खड़े, परन्तु उनसे लाखों गुने और भी
 अप्रत्यक्ष असंख्य पितृ-सुर भी संबोध-सुश्रूषु थे ।

सारी देव-अदेव-लोक-अवली यों शून्यगर्भा हुई,
 मानों सृष्टि समस्त ताप-भवसे थी पीडिता आ गई,
 पापी नारकमें पड़े सड़ रहे, वे भी चले मुक्त हो,
 तोड़ा बन्धन बोधसे निरयका, एकत्र हो आ गये ।

सारी चेतन-सृष्टिकी प्रिय लगी शुद्धा गिरा बुद्धकी
 थे सारंग मृगेन्द्र-संग सुखसे बैठे लवा-श्येन थे,
 उत्साहान्वित वीचि-संग जलमें थे कूदते मीन भी,
 आये कीट-पतंग भी जत्र वहाँ तो अन्यकी क्या कथा ?

चारों ओर फले हुए विटपपै बैठे हुए कीश थे,
 संख्या भी अनुराग-रंग-साहिता थी झाँकती अद्रिसे,
 आई सुन्दर यामिनी उदित हो पूर्वा दिशासे मुदा
 जो थी मंजु तुषार-रश्मि-धवला संस्तुत्य नीलाम्बरा ।

कैसी सुन्दर क्रोड थी प्रकृतिकी, कैसा सुखी काल था,
 शीता सौरभ-गर्भिता अचपला थी वायुकी संपदा,
 क्या ही पूर्ण निशेश-तुल्य मुखसे वाणी कढ़ी मुक्तिदा,
 हो निस्तब्ध सभी चराचर गये, श्रीबुद्धने यों कहा—

“ ऐसा है वह शून्य ब्रह्म जिससे आकाश भी स्थूल है,
 पारावार अगाध भी न जिसकी पाते कभी थाह हैं ।
 जाना आदि न अंत भी न जिसका ब्रह्मा तथा विष्णुने,
 सत्ता है जिसकी अखंड जगमें, ब्रह्माण्डका मूल जो ।

“ सो है गोचर बुद्धिको न मनको तो नेत्रकी क्या कथा ?
 ऊहापोह मृषा मनुष्य-मतिक्रा, सो कल्पनातीत है ।
 दृश्या केवल कार्य-कारणमयी संसारकी योजना,
 धूमी जो बन काल-चक्र जगमें सत्ता सुराराधिता ।

“ जैसे सूर्य स्वकीय स्वर्ण-करसे कीलालको खींचता,
 जो हो अम्बुदकी घटा गगनमें सर्वसह्य सींचता,
 प्राणी-मात्र तथैव कर्म-वश हो संसारमें घूमते,
 है आयान-प्रयाण काल-गातिसे कीला हुआ जीवका ।

“ ब्रह्मा नित्य अपार सृष्टि रचते, श्रीनाथ हैं पालते,
 स्वेच्छासे प्रतिवार नष्ट करते कंकालमाली उसे,
 क्या आश्चर्य त्रिदेव कर्म-वश हैं, सारे पराधीन हैं,
 एका केवल ब्रह्म-शक्ति रहिता है काल-कर्मादिसे ।

“ सीता रंक निशीध-मध्य, उठता प्रत्यूषमें भूप हो,
 राजा भी बनता अकिंचन कभी, संसार निस्सार है,
 ऐसा चक्र अलक्ष्य-भेद-युत हो ब्रह्माण्डमें घूमता,
 भूमें क्या स्थिरता, महान सुख क्या, विश्राम क्या, शान्ति क्या ?

“ देखो शक्ति सनातनी यह चही है कर्मके देषमें,
 धारे है जड़-जंगमादि सबको जो धर्मके नाममें,
 कन्द्याणी जगका निर्गम फरती है सिद्धिस्वप्नोन्मुग्धी,
 ऐसी शाश्वत-रूपिणी कि रहिता है आदिसे अंतसे ।

“ है सर्वत्र प्रवृत्त जो गतिवती सत्ता परब्रह्मकी,
 सो है नित्य, अमोघ, सत्य, सफला, संभावनी, शाश्वती,
 नाया शान्ति-स्वरूपिणी, छविमयी, कल्याण-संयोजिनी,
 शुद्धा, ब्रह्म-विकार-सार-सरसा, आद्यन्तसे हीन है ।

“ प्राणी जो करते वही भुगतते, बोते वही काटते,
 पीड़ा, दुःख, विपाद, शोक फल हैं पापाश्रिता वृत्तिके,
 जो हैं पुण्य-प्रसाद पूर्व-कृतका सो हेतु है सौख्यका,
 देखो कर्म-प्रधान दिव्य जिसकी सीमा भुवा शक्ति है ।

“ क्यों अंभोधि पयोद-रूप रखता ? क्यों मेघ होता नदी ?
 क्यों ज्ञानानिल शीतमें उमड़ता ? क्यों ग्रीष्म निर्वात है ?
 कैसे पल्लव-पुष्प-युक्त वनमें दावाग्नि है व्यापती ?
 देखो, चेतन-शक्ति एक प्रभुकी गूढ़ा अदृश्या महा ।

“ जो सत्कर्म-परा प्रवृत्ति रखके संसारको झेळता,
 सारे दुःख स-हर्ष भोगकर जो कल्याणको खोजता,
 जो गंभीर दिनत्र न्याययुत हो, औदार्यसे पूर्ण हो,
 प्राणी जीवन-वासना-रहित हो, जीता वही मुक्त है ।

“ देखो, जो वह सामने पुरुष है बैठा सुभा-राजमें,
 जो दारिद्र्य-वस्त्र देण पड़ता सो सिद्ध है, सुख है,
 यादवह्वय सदैव दान करता, मिथ्या नहीं बोलता,
 नीना है इस राजको कुलुम-नी हिना, सुग, सुगरी ।

“ ऐसे ही जन वृत्ति-व्यसन दिना देगे नये दुःख है,
 लोही जो इनको पाला बधुता, जो भी पाल पावे ही,
 वीधोरे इनके विरहित रूपमें है लोहोरे निवृत्त है,
 सदा वाणिज्य-विहित रत्न-खजाना होवे ना जे नोहि है ।

“ श्रद्धावान, सुजान, धीर, सुकृती, गंभीर, योगी, गृही,
जो हैं शुद्ध-चरित्र वीर विनयी, निर्वाण पाते वही,
प्राणी जो उपकारमें निरत हैं, वे सौख्य ही भोगते,
नाना क्लेश उठा-उठाकर अभी होते दुखी नित्य ही

“ जो हैं प्रेम-दया-समुद्र जन वे निर्वन्धके पात्र हैं,
श्रद्धा है जिनमें निवास करती वे भक्तिके सिंधु हैं,
सृष्टामें अनुराग नित्य रखते, वे धर्ममें लीन हैं,
प्राणी जो निज कर्ममें निरत हैं वे स्तुत्य हैं, पूज्य हैं ।

“ भाई, इन्द्रिय-भोगसे गुरुतरा कोई नहीं वागुरा,
द्वेषीसे बढ़के न हीन जगमें, क्लेशी न आसक्त-सा,
हिंसासे अधिका न दुष्कृति कहीं देखी गई विश्वमें,
निर्वाणास्पद हैं वही विरत हों जो उक्त दुर्वृत्तिसे ।

“ श्रद्धा-भक्ति-पयस्विनी, गतिवती, सत्कर्म-संघाविनी,
सौख्यावर्तमयी, विमुक्त-सुखदा, पुण्य-प्रसूनावृता,
सर्वांशा जिसमें निगूढ़ रहती सद्धर्म-रत्नावली,
सो निर्वाण-स्वरूपिणी वह चली पीयूष-धारा नदी । ”

वाणी श्री भगवानकी उस घड़ी गंभीरभावा हुई,
प्राणी-मात्र निमग्न हो वचनमें डूबे सुधा-सिंधुमें,
ऐसा भाव अगाध था न तलको पाते कभी शेष भी,
वाणी भी न समीप थी पहुँचती, ब्रह्मा न सानिध्यमें ।

सारी रात्रि समन्तभद्र सबको संवोत्र देते रहे,
ऐसा ज्ञान-प्रकाश था कि अधिका राका हुई उज्ज्वला,
निद्रा, मोह, प्रमाद और जड़ता संसारसे यों उठे,
माया-नाटककी यथा यवनिका आतुर्यसे हों उठी ।

तारा शुक्र प्रभात-अग्रसर हो प्राची दिशामें उगा,
 प्रातः वायु चला हिमाद्रि-तटसे, आशा हुई रंजिता,
 शोभा मंजुल नव्य जीवनमयी फैली मुदा विश्वमें,
 सारे जीव उठे स-हर्ष सुनके पीयूष-वाक्यावली ।

भूके ऊपर एक दिव्य सुखका संचार होने लगा,
 प्राणी-मात्र प्रसन्न हो सुगतकी आज्ञा लगे मानने,
 छाया धर्म-प्रभाव भूमि-तलपै, हिंसा मिटी सर्वथा,
 नाना दान-विधानसे नर लगे सद्धर्मको पालने ।

मोहेयी श्रुति विप्रको, नृपतिको उर्वी हुई शृंगिणी,
 उक्ता वैश्य-समूहको कृषि हुई, सेवा सुरा शूद्रको,
 चारों वर्ण प्रसन्न-चित्त रत थे श्रीबुद्ध-संवोधमें,
 हूवे धर्म-पयोधिमें मिट गया संसारका ताप था ।

राजा भी सुन धर्म धैर्य धरके ऐसे विरागी बने,
 भूला ध्यान स्व-देहका जनक-से ब्रह्मर्षि ही हो गये,
 हो संवृद्ध पशोधरा वन गई संन्यासकी पुत्तली,
 शुद्धा ब्रह्म-स्वरूपिणी सुगतकी सर्वांगिनी हो गई ।

सारे द्वेष, कुभाव, दंभ, लालच या दारिद्र्यकी आरग,
 पीडा, शोक, विषाद, रोग भयमें पातें विरोधन थे,
 यों ही नीच परस्पर-मृग्य-परा पावटकी गंठनी,
 जाके सब संसृत्यो त्रिभिर्जद थी जगदीश हुई ।

ऐसा शुद्ध प्रभाव बुद्धप्रभुका फैला धरा-धाममें
 भागी निस्वनतामयी कुमति भी, डंका वजा ज्ञानका,
 जागे जीव-समूह धर्म-मय हो निद्रा गई पापिनी,
 देनेको जगको सदाचरणकी शिक्षा चले भिक्षु भी ।

यों ही श्रीभगवान देश-भरमें संवोध देते रहे
 भूले या भटके मनुष्य उनसे पाते महा मार्ग थे,
 ऐसी ज्योति जगी समस्त महिमें सन्मार्ग सारे खुले
 लोगोंने प्रभु-मंत्र ले स-कुल की निर्वाणकी साधना ।

ध्यानावस्थित हो जिसे निरखते योगी, यती, संयमी,
 जो है भानु-कृशानु-कारणमयी त्रैलोक्य-उद्भासिनी,
 ऐसी ज्योति जगी कि भूमि-तलपै आनन्द होने लगा,
 भक्तोंके प्रतिगोहमें द्रुत हुई कल्याणकी स्थापना ।

आस्था वेद-पुराणमें बढ़ गई ऊँची ध्वजा धर्मकी,
 श्रद्धा गो-द्विजमें जगी अतिशया क्षोणी हुई हर्षिता,
 गंगा पावन प्रेमकी अग्निपै ऐसी बही सर्वगा
 डूबा विश्व कृपानिधान प्रभुकी लीलामयी भक्तिमें ।

वंशस्थ

सदा इसी भाँति समस्त देशको
 अनूप देते उपदेश धर्मका,
 महा महामैत्र समन्तभद्रको
 व्यतीत पैंतालिस वर्ष हो गये ।

चलायमाना गति है त्रिलोककी
 विलीयमाना सत्र विश्व-संपदा
 शकेश मानों इस एक सत्यको
 चले पुनः स्थापनको नृलोकमें ।

विदेह हो, केवलज्ञान-मग्न हो,
 अनंग हो, संसृति-अंग-लग्न हो,
 अनादिकालीन प्रभा प्रसारके
 अनन्तदेशीय शकेश हो गये ।

व्यतीत धा देह-अशीति-वर्ष भी
 न शेष भू-भार, न शेष भार था,
 अतः, महामंगल-राशि, अन्तर्मे,
 चले कुशी-नामक एक ग्रामको ।

समोर पंखा झलता स-हर्ष था,
 चला सुखाता श्रम-चारि-बुन्द भी,
 वितान धा अंवरमें पयोदका
 बिछा रहे पुष्प-समूह वृक्ष थे ।

पुनः पुनः श्रीघन-पाद-पद्मको
 त्रिलोकने अन्निम वार प्रेमसे,
 छिपे कर-गम-ममेन निन्द्यमे,
 स-मर्तक अमंगल भाव हो गये ।

हुए महा मंगल धाम-धाममें,
 स-पुत्र माता निकलीं निकेतसे,
 प्रमुग्ध हो धेनुक धेनुसे मिले,
 चले सभी स्वागतको शकेशके ।

न जानते थे वह आज रातको
 प्रयाण होगा जगसे शकेशका;
 मनुष्यता है अति स्वार्थतत्परा
 स-प्रेम जिज्ञासु हुई स्वधर्मकी ।

समीप ही नाथ विशाल शालके
 शयान हो शुद्ध प्रसन्न भावसे
 स-हर्ष देते उपदेश धर्मका
 बिता रहे थे वह काल-यामिनी ।

कुर्शा-निवासी श्रुति-विज्ञ भूपसे
 प्रशान्त प्रश्नोत्तर जो हुआ वहाँ,
 मुमुक्षुओंके सब भौंति सर्वदा
 विचारने योग्य अवश्यमेव है ।

‘यथार्थ क्या ?’ ‘कर्म-प्रधान विश्व है;’
 ‘विचार्य क्या ?’ ‘केवल स्वीय धर्म ही;’
 ‘भयावहा क्या ?’ ‘पर-धर्म-वासना;’
 ‘विधेय ?’ ‘कर्तव्य;’ ‘विजेय ?’ ‘देह है ।’

‘हितैपणा क्या ?’ ‘जगकी समृद्धि ही,’
 ‘सदैव क्या है परिहार्य ?’ ‘पाप ही,’
 ‘अधर्म क्या ?’ ‘पीडन;’ ‘धर्म ?’ ‘साधना;’
 ‘अधिष्ठिता ?’ ‘शक्ति;’ ‘अधीश ?’ ‘ब्रह्म है ।’

‘अकार्य ?’ ‘हिंसा;’ ‘प्रभु-कार्य ?’ ‘दान है;’
 ‘अदेय ?’ ‘निष्ठा;’ ‘अभिधेय ?’ ‘सत्य है;’
 ‘प्रशस्य ?’ ‘चिन्ता निज देश-बन्धुकी;’
 ‘रहस्य ?’ ‘निःश्रेयस-लाम-युक्ति है ।’

‘अनादि क्या ?’ ‘जन्म;’ ‘अनन्त ?’ ‘मृत्यु है;’
 ‘अनाद्यनन्ता ?’ ‘गति निर्विशेषकी;’
 ‘प्रमाण क्या ?’ ‘सम्मत वेद-शास्त्रका;’
 ‘विधेय क्या ?’ ‘पूजन देव-पितृका ।’

शार्दूलविक्रीडित

“हेया है जगमें प्रपंच-रचना, श्रेया निकुंजावली,
 देया संपति दीन-हीन जनको, ज्ञेया कथा शम्भुकी,
 ध्येया प्रेम-प्रपत्ति है रसमयी, पेया सुधा मुक्तिकी,
 जेया इन्द्रिय-शक्ति है, स्व-मति है नेया सदा ब्रह्ममें ।”

द्वुतविलंबित

इस प्रकार तधागत प्रेमसे
 स-मुद उत्तर देकर भूपको,
 मनसि इन्द्रियज्ञान समेटके
 मन किया न्य सत्वर प्राप्ति ।

अहह ! घोर असुन्दर काल भी
 परम सुन्दरतामय हो गया,
 सुगत अंतिम दर्शन दे यदा
 सहित देह तिरोहित हो चले ।

जगत-दृश्य अदृश्य शनैः शनैः,
 समय भी गत-भाव हुआ उन्हें,
 पर न शिष्य निराश्रय-से लसे,
 प्रकृति-निःस्वन नीरव हो चला ।

रवि तिरोहित हो रह-सा गया,
 ग्रहण-युक्त हुआ द्विजराज भी,
 गगन यों गुण-हीन बना तदा
 कि वन-वैभव अ-स्वर हो गया ।

इस महाभयकारक कालमें
 प्रकृत-निर्भय बुद्ध अर्भात थे,
 चमकती उनके मुखपै लसी
 अमर-भेद-समुत्थित भावना ।

रजत-पत्र-समुज्ज्वल भालपै
 छविमयी प्रभुता रत-नृत्य थी,
 परम वैभव-पूर्ण समा रही
 युगल लोचनमें अभिरामता ।

अमरता उनके प्रतिश्वाससे
 तनु-प्रवेश तदा करने लगी
 अमर कीर्ति विहाय नृ-लोकमें
 चल दिये प्रभु यों निज धामको ।

त्वरित शब्द हुआ घन-नाद-सा
 सब दिशा व्यनुनादित हो उठी,
 घनिमयी वन नीरव रोदसी
 परम दिव्य प्रकाशवती हुई ।

लख पड़ा तब जो उस ज्योतिमें
 वह अतीव अलौकिक दृश्य था,
 लख पड़ी घन-वाहनकी ध्वजा
 फहरती नभ-मंडलमें मुदा ।

ककुभमें दश वारण भी लसे,
 धरणिपै रथ देख पड़ा वही,
 लख पड़ा वह उज्ज्वल चक्र भी,
 पणव-आनक-गोमुख भी बजे ।

फिर प्रशान्त हुई सब रोदसी
 सकल संतुति धर्म-मयी हुई,
 अमर-वृन्द सभी सुखमें सने,
 वन गई गत-भार वसुन्धरा ।

शार्दूलविकीर्णित

व्याप्ता है पटचक्र-नभ्य जिनकी आभासुक्ता दरा,
 शुद्धा दृष्टि हृदयमें परिगता, संज्ञा-मन्त्रिणी हो,
 जो पञ्चाक्षर देव ध्यान परों नावधने ली है,
 वे गोपीधरनन्द गीतक सदा रंजित हृदयों में ।

राकानायक निष्कलंक, मणि भी कार्कश्यसे मुक्त हो
 तेजोराशि पतंग स्वीय पदसे पीयूष वर्षा करें,
 तो भी नीरज, रत्न, और खगमें वैसी कहाँ योग्यता,
 ऐसे वाद-विवाद-ग्रस्त जनकी सिद्धार्थ बाधा हरेँ ।

पुंजीभूत समस्त आर्त जनकी अभ्यर्थना बुद्ध हैं,
 मूर्तीभूत अनूप शाक्य-नृपके सौभाग्य सर्वार्थ हैं,
 एकीभूत रहस्य हैं निगमके, संसारके सार हैं,
 श्वेतीभूत-स्वरूप शून्य विमुक्त साकार सिद्धान्त हैं ।

समाप्त

कठिन शब्दोंका कोश

अ-आ

अकांड=असमय ।
 अकिंचना=शुद्धि, धन-हीना ।
 अक्षुपर=समुद्र, सूर्य ।
 अग=वृक्ष, पेड़ ।
 अग्रग=आगे जानेवाला ।
 अगद=आयुधि, दवा ।
 अव=दुःख, पाप, राहु ।
 अचेष्ट=निष्क्रिय ।
 अजल=सदा, निरंतर ।
 अजाज=बकरीका बच्चा ।
 अजाजीव=बकरी चरानेवाला ।
 अजिन=मृगका चर्म ।
 अजिन-अंबर=तपस्वी, भक्त ।
 अजिर=आँगन ।
 अटवी=जंगल, वन ।
 अणी=नोक, पैनी कोर ।
 अट्टपवाद=दोनों वादोंसे इतर वाद ।
 अद्रि=पर्वत, पहाड़ ।
 अधः, अधो=नीचे ।
 अधित्यका=अटारी, पर्वतकी ऊपरकी भूमि ।
 अधुव=अनिश्चित ।
 अनय=शिव, पाप-रहित ।
 अनभितंग=दिना समयके ।
 अनीक=सेना ।
 अनुजीविनी=लेपिका, दासी ।
 अनुभावन=पति दीहना ।
 अनुदीर्घन=दासीको देना ।

अनुण=गर्भिते रहित ।
 अनूरु-सारथी=सूर्य ।
 अनूरु-रथ=सूर्य ।
 अपनोदन=दूर करना ।
 अपांग=कटाक्ष ।
 अञ्ज=कमल, चन्द्रमा ।
 अन्द=वर्ष ।
 अभ्र=मेघ, बादल ।
 अभ्रनु=ऐरावतकी स्त्री ।
 अभर्तुका=विधवा, पति-हीना ।
 अभावी=न होनेवाला ।
 अभिचारिणी=तंत्र-मंत्र करनेवाली ।
 अभिज्ञ=ज्ञाता ।
 अभिजित्=एक नक्षत्र ।
 अभीष्टग=बारबार, लगातार ।
 अभीष्टु=लगाम ।
 अन्यर्थना=प्रार्थना ।
 अमरावती=देवताओंकी पुरी ।
 अमृत=देवता, मुखा ।
 अमिताभ=अमिता तेजवाले, हृदयदेव ।
 अमोघ=अवर्ध ।
 अयस=लोहा ।
 अयुत=शरीर, असंख्य ।
 अयि=पुंस ।
 अयिष्ठु=जोने लड़के भर्तृ-हृदय ।
 अयिष्ठु=लड़का, पुत्र ।
 अयिष्ठु=लड़का, पुत्र ।
 अयिष्ठु=लड़का, पुत्र ।
 अयिष्ठु=लड़का, पुत्र ।

उरु=जंघा ।

उल्का=पुच्छ-तारा ।

उर्वी=पृथ्वी ।

उत्तास=उट्टी सौं ।

उदीरिता=उत्पन्न की गई, निकाली गई ।

उत्ता=एक प्रकारकी गां ।

ऊर्भि=तरंग ।

ए-ओ-अं

एकाकी=अकेला ।

एण=मृग । एणी=मृगी ।

ओष=समूह ।

अंकन=पहरेवालोंकी एक प्रकारकी बोली ।

अंगराग=देहमें लगानेका चूर्ण, पाउडर ।

अंघ्रि=पैर, जंघा ।

अंचित=पूजित, उत्पित ।

अंबर=कपड़ा, आकाश ।

अंश=कंघा ।

अंशु=किरण ।

अंशुक=रेशमी कपड़ा ।

क

ककुभ=दिशा ।

कच=चाल ।

कदन्न=लखा-छुखा अन्न ।

कदम्ब=पानी, वर्षा ।

कदरी=वेणी ।

कमलासन=ब्रह्मा ।

कमलांगज=कमलसे उत्पन्न ।

कपितांग=दुबला ।

करक=ओला ।

कर्क=एक राशिका नाम, -कैंकड़ा ।

करद=कर देनेवाला मनुष्य ।

करुणु=हाथीका दया ।

कलविंग=एक छोटा पक्षी, नौरैव्या ।

कला=काल-परिमाण, तुल्य ।

कलाधर=चन्द्रमा, कलाकार ।

कलापी=भयूर ।

कवि=शुक्र, कविता करनेवाला ।

कप=कसीटी ।

कशा=कोड़ा, चावुक ।

कातर=अधीर ।

कादम्बिनी=मेघमाला ।

कान्त=प्रिय, सुन्दर ।

कान्तार=वन, जंगल ।

कारण्य=भीस्ता, कृपणता ।

कारिका=गहरे दार्शनिक विचारयुक्त कविता, गीत, संगीत ।

कारु=चढ़ई ।

काशिनी=प्रकाशिनी ।

कासार=तालाब ।

किजल्क=पराग ।

किरीटी=राजा, अर्जुन ।

किञ्चलय=पत्ते, पत्र ।

कीलाल=जल, मृगजल ।

कुञ्चित=टेढ़ा ।

कुनुइती=कुनुदिनी ।

कुन्त=भाला, नेजा ।

कुंतल=चाल ।

कुलाय=घोंसला ।

कुलाल=कुम्हार ।

कुशेदय=कमल ।

कोक=चकवा-चकई ।

कोकनद=कमल ।

कोदंड=धनुर ।

कोयष्टिका=टिटिहरी ।

क्रन्कार=हंसकी बोली ।

क्रोड़=गोद ।

कौश=रेशम ।

कौशेय=श्रेष्ठी ।

कुत्ति=त्वचा, खाल ।

कंथा-शोभा=केवल चिथड़े पहने हुए ।

ख

खनित=खोदा हुआ, निवित ।

खल्ली=तलवारवाले ।

खनि=खान, आकर ।

खस्ताम=नाशु ।

खारित=खाये हुए ।

ग

गणक=ज्योतिषी ।

गद=रेशम

गणित=बड़ा

गरीयसी=गरी

गदमान=गरी

गदय=गदकी गाय ।

गदय=गदकी गाय ।

गदय=गदकी गाय ।

घ

घनसार=चंदन ।

घनान्त=शरद् ऋतु ।

घंटा-मार्ग=राजमार्ग, आम रास्ता ।

च

चक्र-चात=नायिका बगूला ।

चटक=एक छोटा पक्षी, चिड़िया ।

चतुर्हायनी=एक प्रकारकी उत्तम गाय ।

चमूरु=मृग, काला मृग ।

चरम=अन्तिम ।

चर्चमाण=साया जाता हुआ ।

चरिण्यु=चलनेवाला ।

चामीकर=योगा ।

चंनम=बार-बार चलना ।

चन्द्रशाला=चटशाल ।

चन्द्रशाला=चलवार, चौदगी ।

चिन्तु=वाल ।

चिन्तन=चिन्तन ।

चेल=चमेल ।

जाती=एक प्रकारका पुष्प, चमेली ।
 जाया=स्त्री ।
 जिज्ञासु=जाननेकी इच्छा रखनेवाला ।
 जीमूत=मेघ ।
 जीवक=साँप नचानेवाला ।
 जीविता=जीवन ।
 जीवन=जानी ।
 जेया=जीतने योग्य ।

झ

झल (प)=मछली ।
 झटिति=शीघ्र ।
 झापल=झाड़ोंसे छिपी हुई भूमि ।
 झंझूति=शब्द, आवाज़ ।
 झंझा=तीव्र वायु ।

ड

डिडिम=एक वाजा ।

त

तथागत=बुद्धदेव ।
 तनुवाय=जुलाहा ।
 तन्द्रा=निद्रा ।
 तनुरह=रोयों, रोम ।
 तनूज=पुत्र ।
 तपन=सूर्य ।
 तमिस्रहा=सूर्य ।
 तमी=रात्रि ।
 तन्प=दिछीना, पलंग ।
 त्वदीय=तुम्हारा ।
 त्वरित=शीघ्र ।
 तादात्म्य=तार्जनीता ।
 तार=ऊँचा ।
 तिमिरा=अंधा या रोशनी का अभाव ।
 तिमिरित=अंधा होनेवाला ।

तिरोहित=अस्त, दृष्टिसे बाहर ।
 त्रिदिवेश=इन्द्र, देवतागण ।
 त्रियामा=रात्रि ।
 त्विषा=प्रकाश, ज्योति ।
 तुरीया=चतुर्थीवस्था ।
 तुषार=पाला, बर्फ ।
 तुहेन=हिम ।
 तुहिन-दीधिति=चन्द्रमा ।
 तुहिन-धूम=कुहरा ।
 तूणीर=शरोंका कोप ।
 तैलभ्यंगा=तेलसे भीगी हुई ।
 तोम=स्तोम, ढेर ।
 तोरण=दरवाजेकी मेहराब ।

द

दक्ष=एक प्रजापति । कुशल ।
 दायित=प्रिय ।
 दर्भ=कुश ।
 दव (दाव)=बनकी अग्नि ।
 दृन्द्वातीत=दोनोंसे पर, अलग ।
 द्विज=पक्षी, दाँत, बालण ।
 द्विजिह्व=साँप ।
 द्विफाल=दो भाग ।
 द्विरद=राथी ।
 द्विरेषा=भ्रमर ।
 द्विष=दो प्रकारका ।
 दाम=रस्सी ।
 दासिवा=बन्धुपुत्र ।
 दासिपुत्र=जो दास का पुत्र हो ।
 दानिप=वस्त्र ।
 दानिपि=वस्त्र ।
 दानिपि=वस्त्र ।
 दानिपि=वस्त्र ।
 दानिपि=वस्त्र ।
 दानिपि=वस्त्र ।

... ..

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	श्लोक	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९	४	४	द्रत	द्रुत
४८	२-४	२-३	उद्भुत	अद्भुत
५२	१	४	विशद	विषाद
५६	१	३	साम्राजि	सम्राजि
८२	१	२	सरु	सरि
८६	१	१	तोरणादि	तोरणादि
८६	३	४	सुवासन्तिकता	सुवासन्तिकता
९५	२	३	सुमुन्नत	समुन्नत
१३५	३	४	हुई	हुआ
१३७	१	१	प्रागाढ	प्रागाढ
१९०	२	१	कीकाल-स्वरूप	कीलाल-स्वरूप
१९८	५	१	सान्त्वनाको	सान्त्वना दे
२११	३	२	सुमिष्ट	सुमिष्ट
२११-१२	५-३	१	म्याद-युक्त	म्याद युक्त
२१८	२	१	जोम्ना	जोम्ना
२२३	३	२	राजिनी	राजनी
२२३	५	१	निम्नगा	निम्नगा
२२७	२	४	ली त	ली त
२७१	३	३	मरजी	मरजी

सूचना : पृष्ठ ३९ के अन्तर्गत ४८ अक्षरों में 'शुद्धि' शब्द का अर्थ 'शुद्ध' है। इस शब्द का अर्थ 'शुद्ध' है।

